वर्ष 3 - अंक - 19 अप्रैल 2015
ISSN 2320-0359

138

युद्धरत आम आदमी

वंचितों का मासिक आर्थिक-सामाजिक दस्तावेज़ी साहित्य

सहयोग राशि 20₹

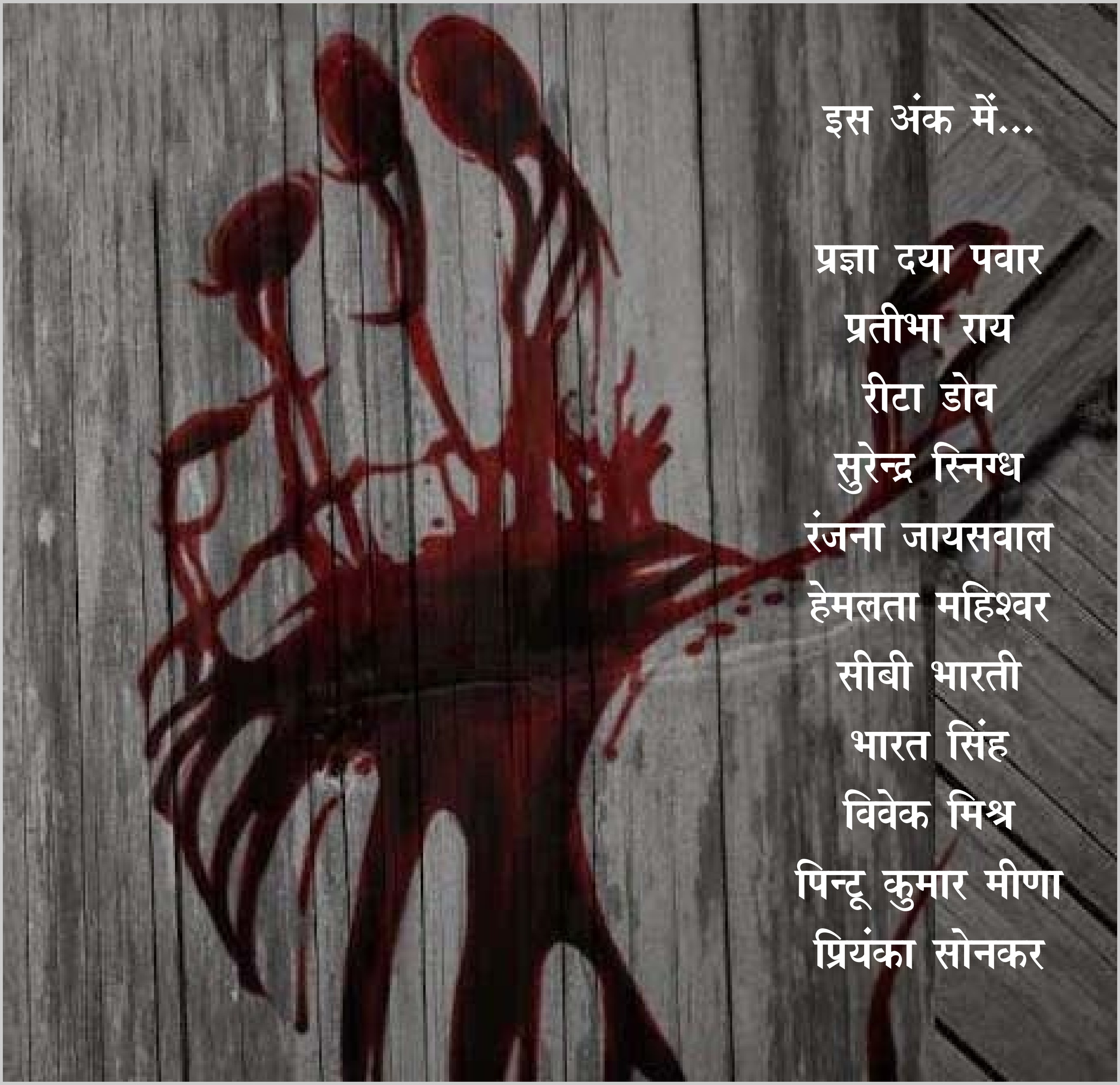

युद्धरत आम आदमी

138

वंचितों का मासिक आर्थिक-सामाजिक दस्तावेज़ी साहित्य

वर्ष-3, अंक-19, अप्रैल 2015

प्रधान संपादक

रमणिका गुप्ता

कार्यकारी संपादक

पंकज चौधरी

लेआउट :

दिनेश कुमार

बर्नड हेम्ब्रम

सहयोगी राशि

साधारण अंक 1 प्रति	:	20/-
वार्षिक (साधारण डाक)	:	225/- व्यक्तिगत
पांच वर्ष (साधारण डाक)	:	1125/- व्यक्तिगत
संस्थाओं के लिए (वार्षिक)	:	425/-
संस्थाओं के लिए (पंचवर्षीय)	:	2125/-
आजीवन व्यक्तिगत	:	5,000/-
संस्थाओं के लिए आजीवन	:	10,000/-

नोट : सभी राशि युद्धरत आम आदमी, दिल्ली के नाम से भेजें। दिल्ली से बाहर के चैक भेजते समय बैंक कमीशन के 50/- अतिरिक्त जोड़ दें।

युद्धरत आम आदमी अब आप वेबसाइट **www.yuddhrataamaadmi.com** पर भी देख सकते हैं।
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त।

संपादकीय कार्यालय

युद्धरत आम आदमी

द्वारा : रमणिका फाउंडेशन

1516 पहली मंजील, वजीर नगर, कोटलामुबारकपुर, नई दिल्ली-03

कार्यालय : मो. : 09312039505, मो. : 07042350505

ई-मेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रमणिका गुप्ता,
प्रकाशन का स्थानः 1516 पहली मंजील, वजीर नगर, कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली-03
मुद्रित : रूचिका प्रिंटर्स, बी-25, DSIDC कॉम्पलेक्स, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110032

सदस्यता की राशि खाता सं. 794412136 IFSC Code : IDIB000D008 इंडियन बैंक में जमा कर रसीद स्कैन कर के ईमेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com पर भेजकर टेलीफोन नं. 011 46577704 सूचित करें

धन्यवाद

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के हैं, इसमें 'युद्धरत आम आदमी', सम्पादक या सम्पादक मंडल की सहमति जरूरी नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। सम्पादन और संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अनुक्रम

1. **संपादकीय**	बहुजन राजनीति की समकालीनता	पंकज चौधरी	03
2. **स्त्री बोली**	हक की बात समझें तो भला है	सुनीता ठाकुर	06
3. **दर्द बोला तो**	प्रतिरोध की संस्कृति और मराठी लोकगीत	भारती गोरे	07
4. **मुद्दा**	मोदिनामा : लूट की छूट–लूट सके तो लूट	महेश कुमार	09
5. **ओडिया कहानी**	बाघ	प्रतिभा राय	10
6. **मराठी नाटक**	बिल्कुल खैरलांजी	प्रज्ञा दया पवार	15
7. **अश्वेत कवयित्री**	प्रस्थान, तारों का घर	रीटा डोव	46
8. **हस्तक्षेप**	पहेली	हेमलता महिश्वर	47
9. **कविताएं**	चार कविताएं	सुवंश ठाकुर अकेला	49
	चार कविताएं	भारत सिंह	51
	आठ कविताएं	इरेन्द्र बबुअवा	53

10. स्त्री–दुनिया

मानसिकता बदलने की जरूरत	रंजना जयसवाल	56
बलात्कार की कितनी सीमाएं!	प्रियंका सोनकर	58
11. सिलेबस में दलित साहित्य शामिल हो	सीबी भारती	61

12. प्रवासी साहित्य

प्रवासी साहित्य की अवधारणा और स्त्री कथाकार	निर्मल रानी	63

13. जलसाघर

सिनेमा के दर्शक : सामूहिक पाठ से वैयक्तिक पाठ...	दिलीप शाक्य	67

12. निकष

जरूरत है बिरसा के विस्तार की	पिन्टू कुमार मीणा	70
कॉमरेड कवि	सुमन कुमारी	76

13. हलचल

	विवेक मिश्र	78

सम्पादकीय

बहुजन राजनीति की समकालीनता

पिछले कुछ सालों से दलित–बहुजन बुद्धिजीवियों का एक तबका यह भ्रामक प्रचार फैलाने में मुब्तिला है कि दलित–बहुजन का स्वाभाविक मित्र भाजपा है और कांग्रेस उसका दुश्मन। ये बुद्धिजीवी तर्क देते हैं कि भाजपा की जिन–जिन राज्यों में सरकारें बनीं उनमें से अधिकांश राज्यों के मुख्यमंत्री दलित–बहुजन तबके से बनाए गए और भाजपा और उसकी सहयोगी पार्टियों ने अपने यहां के प्रमुख पदों पर दलित–बहुजन तबके से आने वाले नेताओं को भी बिठाया। जबकि कांग्रेस ने 65 सालों तक देश पर हुकूमत करने के बावजूद दलित–बहुजनों को न तो पार्टी संगठन में ही और न ही सरकार में आगे बढ़ने दिया।

भाजपा ने दलित–बहुजन तबके का कितना भला किया इसको जानने के लिए हमें बहुत पीछे जाने की जरूरत नहीं है बल्कि इसको जानने के लिए 16वीं लोकसभा के चुनाव परिणाम ही पर्याप्त होंगे। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भारतीय जनता पार्टी को तो 16वीं लोकसभा के चुनाव में भारत की जनता का अप्रत्याशित समर्थन और बहुमत मिला लेकिन वहीं दलित–बहुजन की राजनीति करने वाली बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, समाजवादी पार्टी, डीएमके, जनता दल यू आदि का लगभग सूपड़ा साफ हो गया। बसपा को तो एक भी सीट नहीं मिल पाई। पूरे चुनाव में अपने को ओबीसी बताकर नरेंद्र मोदी ने छल से आदिवासियों, दलितों और पिछड़ी जातियों का वोट हड़प लिया और दलित–बहुजन की राजनीति करने वाली पार्टियों का गला घोंट दिया। आरएसएस को भी वर्षों से नरेंद्र मोदी के रूप में एक ऐसे तथाकथित दलित–ओबीसी की तलाश थी जो तेजी से बढ़ रही दलित–बहुजन की राजनीति का सफाया कर सके। आरएसएस को इसमें पूरी सफलता मिली और एक तथाकथित ओबीसी ने भारतीय राजनीति से दलित–बहुजन की राजनीति करने वाले कई–कई नेताओं को चलता कर दिया। नरेंद्र मोदी के राजनीतिक करियर को यदि देखा जाए तो एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता जो उनके दलित–बहुजन और अल्पसंख्यक तबके की भलाई का सबूत पेश करता हो। गुजरात के जब वे मुख्यमंत्री थे तो उन्होंने कई ऐसे कल्याणकारी योजनाओं को बंद करवा दिया जिनसे समाज के कमजोर और वंचित तबकों की भलाई हो रही थी। मोदी दलितों के कितने बड़े शुभचिंतक हैं इसका पता उनकी 'कर्मयोग' नामक पुस्तिका को पढ़कर चल जाता है। इस पुस्तिका के माध्यम से वे वाल्मीकियों को यह नसीहत देते नहीं थकते कि उनको मैला साफ करने का काम करते रहना चाहिए और यही काम उन्हें ईश्वर से साक्षात्कार कराएगा। मोदी और भाजपा दलित–बहुजनों के कितने बड़े हितैषी हैं इसका पता उनके मंत्रिमंडल को भी देखकर चल जाता है। मोदी ने एक भी दलित–बहुजन को इस लायक नहीं समझा कि उन्हें गृह, वित्त, रक्षा, विदेश या रेलवे जैसा मंत्रालय दिया जाए। मोदी रामविलास पासवान जैसे दलित नेता को कैबिनेट मंत्री तो बनाते हैं लेकिन पासवान को वह ऐसा मंत्रालय सौंपते हैं जिससे कि दलित राजनीति करने की उनकी सारी गुंजाइश ही खत्म हो जाए। दलित राजनीति के एक और चेहरे उदित राज का इस समय सबसे बुरा हाल है। वे बहुत अरमान के साथ भाजपा में शामिल हुए थे। इसका लाभ भी उन्हें मिला कि वे लोकसभा के सदस्य बन गए। लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद वे मंत्री नहीं बन पा रहे हैं। गौरतलब है कि मोदी सरकार में मंत्री पद पाने के लोभ में उदित राज ने दलित राजनीति को फिलहाल तिलांजलि ही दे दी है। उदित राज को भाजपा में शामिल होने से पहले तक मैं दलित राजनीति के सबसे मुखर और प्रखर प्रवक्ता के तौर पर देखता था। वे दलित–बहुजन के उन तमाम मुद्दों को आंदोलन में तब्दील करने की सामर्थ्य रखते थे जो उनके हितों से सीधे–सीधे या परोक्ष रूप से जुड़े होते थे लेकिन जब से उन्होंने भाजपा ज्वाइन किया है उनकी बोलती बंद हो गई है।

केंद्र में जब से नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भारतीय जनता पार्टी या एनडीए की सरकार सत्तासीन हुई है तब

से देश के विभिन्न कोनों में दलित–बहुजन के खिलाफ होने वाले अपराधों में भी वृद्धि हुई है। लेकिन दलित–बहुजन की राजनीति करने वाली पार्टियों की इस तरह से कमर तोड़ दी गई है कि वे उन घटनाओं या अपराधों के खिलाफ प्रतिक्रिया तक व्यक्त करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही हैं। जबकि कांशीराम का मानना था कि दलित–बहुजनों के खिलाफ अपराधों में जितनी ज्यादा वृद्धि होगी दलित–बहुजन राजनीति उतनी ही फलेगी–फूलेगी। कांशीराम के इस मंत्र को भुनाने की शक्ति आज के दौर में दलित–बहुजन की राजनीति करने वाली किसी भी पार्टी में नहीं बची है। मोदी और भाजपा के उभार ने सबसे ज्यादा नुकसान मायावती और उनकी बहुजन समाज पार्टी का किया है। भाजपा का लगातार इस कदर विस्तार हो रहा है कि बसपा का राष्ट्रीय पार्टी होने का दर्जा भी छिनने वाला है। मायावती के बारे में छन–छनकर यह खबर भी आती रहती है कि अपने अस्तित्व को बचाने की खातिर वे मोदी से हाथ मिलाने वाली हैं। मायावती पिछले छह–सात महीनों में इतनी शिथिल हुई हैं कि अपने राजनीतिक करियर में कभी भी वे इतनी निस्तेज नहीं हुई थीं। मायावती के सर्वसमाज के फार्मूले ने 16वीं लोकसभा के चुनाव में उन्हें सबसे ज्यादा धोखा दिया है। इस बार उत्तर प्रदेश में ब्राह्मणों के एकमुश्त वोट भाजपा को मिले जबकि अत्यंत पिछड़ी जातियों और दलितों के भी कुछ वोट बसपा को नहीं मिल पाए। कांशीराम ने बहुत मेहनत और समर्पण से देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में दलित राजनीति की मजबूत नींव रखी थी और बसपा जैसे संगठन को खड़ा किया था लेकिन भाजपा के उभार ने उसको तहस–नहस कर दिया है।

दलित–बहुजन की खुलकर राजनीति करने वाले लालू प्रसाद यादव का यह हाल है कि पिछले लोकसभा चुनाव में अपनी पत्नी और बेटी की सीट भी गंवा बैठे। कई तरह के घोटालों में फंसाकर लालू प्रसाद यादव को लगभग चुप–सा करा दिया गया है। गौरतलब है कि लालू अभी जमानत पर रिहा हैं और उनकी यह रिहाई तभी तक संभव है जब तक कि वे भाजपा और मोदी के खिलाफ एक भी शब्द नहीं बोलेंगे। लालू के विरोधियों का मानना है कि जिस दिन लालू संघ परिवार और भाजपा के खिलाफ बोलना शुरू करेंगे वे जेल की सलाखों के पीछे होंगे। इस तरह का अघोषित करार लालू और संघ परिवार के बीच है। लालू प्रसाद यादव धर्मनिरपेक्षता की राजनीति करने वाले एक कद्दावर नेता रहे हैं और जब तक वे सत्ता में रहें साम्प्रदायिकता की राजनीति को ध्वस्त करते रहे। इसीलिए लालू को संघ परिवार अपना दुश्मन नंबर–1 मानती है और उनकी राजनीति को नष्ट करने का हरसंभव उपाय कर रही है। नीतीश कुमार का जब तक भाजपा से गठबंधन रहा तब तक विकास पुरुष और सुशासन बाबू के नाम से मीडिया ने उनको प्रचारित करने का काम किया लेकिन जैसे ही नीतीश ने भाजपा से नाता तोड़ा वे बिहार में जंगलराज की पुनर्स्थापना करने वाले नेता के रूप में कुख्यात होने लगे और जद यू को भाजपा ने 16वीं लोकसभा के चुनाव में 2 सीटों पर सिमटा दिया।

मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी को भाजपा ने अपने परिवार तक सिमटा दिया। पश्चिमी यूपी में भाजपा प्रायोजित दंगों से सपा का सबसे ज्यादा नुकसान हुआ। मायावती से मुलायम सिंह यादव और उनकी समाजवादी पार्टी का पुराना राड़ खत्म नहीं हो पा रहा है। मायावती का आरोप है कि जब से यूपी में सपा की सरकार बनी है दलितों के खिलाफ अपराधों में सबसे ज्यादा वृद्धि हुई है और इन अपराधों को सपा के गुंडे अंजाम दे रहे हैं। दलित और पिछड़ी जातियों की एकजुटता की जिस राजनीति का कांशीराम ने सपना देखा था उसमें सबसे ज्यादा पलीता लगाने का काम मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी ने किया है। बसपा और सपा दोनों के उद्देश्य एक होते हुए भी आज के दिनों में दोनों एक–दूसरे के खून के प्यासे ज्यादा लगते हैं। दलितों के प्रमोशन में आरक्षण के विधेयक के सवाल पर सपा ने जिस तरह से संसद से लेकर सड़क तक बवाल काटा था उसकी जितनी भी भर्त्सना की जाए कम होगी। सपा की वजह से यह विधेयक आजतक दोनों सदनों से पारित नहीं हो सका है। गौरतलब है कि यह विधेयक राज्यसभा से तो पारित हो चुका है लेकिन लोकसभा से इसका पारित होना अभी बाकी है। इस संदर्भ में यहां यह उल्लेख करना जरूरी लगता है कि जब भी पिछड़ी जातियों के हकों और संवैधानिक अधिकारों का सवाल पैदा हुआ है दलितों ने उनका बढ़–चढ़कर साथ दिया है। उस दौर को भला कौन भूल सकता है जब पिछड़ी जातियों के लिए मंडल कमीशन की संस्तुतियों को लागू करवाने के लिए दलितों ने पिछड़ी जातियों का संसद से लेकर सड़क तक साथ दिया था और लाठियां खाई थीं। यदि इसी तरह से दलित–बहुजन ताकतें बिखरी रहीं तो मोदी के नेतृत्व वाली एनडीए की सरकार कल को महिला आरक्षण विधेयक भी दोनों सदनों से ध्वनि मत से पारित करवा लेगी। और फिर महिला आरक्षण विधेयक में दलित–बहुजन महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान किए जाने की मांग धरी की धरी रह जाएगी। अगर महिला आरक्षण विधेयक में

दलित–बहुजन महिलाओं के लिए अलग से आरक्षण का प्रावधान नहीं होता है तो उसका सबसे ज्यादा नुकसान ओबीसी को होगा। दलित–आदिवासियों को इसका उतना नुकसान नहीं होगा जितना ओबीसी को क्योंकि दलितों और आदिवासियों के लिए विधायिकाओं में सीटें आरक्षित हैं। दलित–बहुजन राजनीति की समकालीन स्थिति का सबसे दुर्बल पक्ष यह है कि ये ताकतें आज बुरी तरह से बिखर चुकी हैं। यहां अहं की टकराहट और निजी हित सबसे ज्यादा प्रबल हैं और 85 फीसदी दलित–बहुजन जनता के सामूहिक हित आज गौण हो चुके हैं। नरेंद्र मोदी को इसी बिखराव का सबसे ज्यादा फायदा हो गया है।

इसमें कोई शक नहीं कि भाजपा ने कल्याण सिंह, उमा भारती, बंगारू लक्ष्मण, शिवराज सिंह चौहान जैसे दलित और पिछड़ी पृष्ठभूमि से आने वाले नेताओं को प्रमुख पदों पर बिठाया। लेकिन एक समय के बाद इनका क्या हाल किया इसको भी दुनिया जानती है। दलित–बहुजन समाज से आने वाले जिन नेताओं को भाजपा ने आगे बढ़ाया उसके पीछे उसके दो बड़े स्वार्थ रहे हैं। एक तो इन बड़े जनाधार वाले नेताओं के माध्यम से दलित–बहुजन जनता का ज्यादा से ज्यादा वोट प्राप्त कर के भाजपा की राजनीति को चमकाना या राज्य–केन्द्र की सत्ता को प्राप्त करना और दूसरा हिन्दू राजनीति की पुख्ता व्यवस्था कर लेना। यह हमें नहीं भूलना चाहिए कि संघ परिवार या भाजपा को जो राजनीतिक सत्ता प्राप्त हुई है वह इन्हीं दलित–बहुजन समाज से आने वाले नेताओं के दम पर। लेकिन संघ परिवार और भाजपा की राजनीति हिन्दू (ब्राह्मण) राजनीति रही है और उसे दलित–बहुजन की राजनीति से हमेशा चिढ़ रही है। दलित–बहुजन की राजनीति को खत्म करने के वास्ते ही संघ परिवार ने हिन्दू, हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान की राजनीति की शुरुआत की। उसे यह कतई बर्दाश्त नहीं कि दलित जैसे अस्मितामूलक पहचान की राजनीति का भी कोई अस्तित्व हो। इसीलिए संघ परिवार और भाजपा, हिन्दू, हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान की आड़ में बड़ी ही चालाकी से दलित राजनीति को अपने में समा लेना चाहती है या उसको खा लेना चाहती है। हिन्दू, हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान की राजनीति के बढ़ने का मतलब है रामराज्य की पुनर्स्थापना। इस रामराज्य में किसी सीता को घर से निकाल दिया जाता है और किसी शूद्र को वेद पढ़ने पर उसके कान में सीसा पिघला दिया जाता है। भाजपा ने दलित और बहुजन समाज से आने वाले जिन नेताओं को आगे बढ़ाने का काम किया उनके माध्यम से संघ परिवार ने हिन्दू हितों को ही साधने का प्रयास करते हुए विशुद्ध हिन्दू राजनीति का विस्तार करने की कोशिश की। इससे व्यापक दलित–बहुजन समाज का भी भला हुआ हो इतिहास में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता। क्या वे दिन हम भूल गए हैं जब मंडल कमीशन की संस्तुति को लागू करवाने के सवाल पर भाजपा ने विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार से समर्थन वापस ले लिया था। इसीलिए दलित–बहुजन समाज से हिन्दू हितों को साधने के लिए न्यूनाधिक लोगों को आगे कर देना एक बात है और व्यापक दलित–बहुजन समाज की भलाई की बात करते हुए उसकी राजनीति करना दूसरी बात है।

–पंकज चौधरी

अपरिहार्य कारणों से युद्धरत आम आदमी की प्रधान संपादक रमणिका गुप्ता इस बार 'खरी–खरी बात' नहीं लिख रही हैं। इस अंक का संपादकीय लिखने की जिम्मेदारी उन्होंने अपने कार्यकारी संपादक पंकज चौधरी को दी।

–प्रधान संपादक

स्त्री बोली

हक़ की बात समझें तो भला है

सुनीता ठाकुर

राजस्थान हाईकोर्ट ने एक फैसला सुनाया है और आर्य समाज मंदिर में अन्तर्जातीय, प्रेम विवाह करने वाले युगल–प्रमियों के लिए एक बुरी या चिंताजनक खबर है। फैसले के अनुसार आर्य समाज मंदिर में अन्तर्जातीय, प्रेम विवाह करने से पहले युगल प्रेमियों को अपने माता–पिता/अभिभावकों और स्थानीय पुलिस थाने/अधिकारी को सूचित करना अनिवार्य होगा। दूसरी बात, विवाह के समय दोनों पक्षों की ओर से दो–दो गणमान्य व्यक्तियों का मौजूद होना अनिवार्य होगा।

एक प्रगतिशील समाज का नागरिक होने के नाते हमें यह ज़रूर सोचना चाहिए कि इस तरह के फैसले किन विधिक आधारों पर जारी किए जाते हैं और ऐसे फैसलों के द्वारा किसी भी व्यक्ति के, चाहे वह महिला हों या पुरुष, किन–किन नागरिक और मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है। यह फैसला संविधान के अनुच्छेद 14 का सीधा–सीधा उल्लंघन करता है, जो किसी जातीय, धार्मिक और किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना आज़ादी से जीवन जीने और कानून के समक्ष सुरक्षा की दुहाई देता है। दूसरी ओर, नागरिक और मानव अधिकारों के उल्लंघन की नज़र से भी यह फैसला, एक भारतीय नागरिक के रूप में युवाओं को प्राप्त मौलिक अधिकारों और मानवाधिकारों का हनन करता नजर आता है।

संविधान, यदि किसी नागरिक को आज़ादी से जीवन जीने का अधिकार व आज़ादी देता है, जातीयता के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव, प्रतिबंध और आज़ादी पर रोक को गलत करार देता है तो इस प्रकार के फैसलों द्वारा क्योंकर युवाओं के वैवाहिक अधिकारों पर नाजायज प्रतिबंध लगाता है।

क्या इस फैसले से अन्तर्जातीय प्रेम विवाहों के विषय में निहित जातीय दुर्भाव, सामाजिक प्रतिबंध और अंकुश की भावना को नहीं समझा जा सकता है। समाज के गणमान्य व्यक्तियों का विवाह के समय मौजूद रहना किस प्रकार संभव हो सकता है, जबकि सारा का सारा सामाजिक परिवेश अन्तर्जातीय प्रेम विवाहों के बारे में एक नकारात्मक सोच और अप्रोच रखता है। दूसरी ओर हम सभी जानते हैं कि गांवों, कस्बों में तो क्या, बड़े–बड़े शहरों में भी पुलिस और प्रशासन तंत्र रसूखदार, गणमान्य व्यक्तियों तथा परिवार की रूढ़िवादिता के ही पक्ष में काम करते नजर आते हैं। अब आप पुलिस को सूचना देने का अर्थ स्वयं समझ सकते हैं। क्या पुलिस बिना किसी सामुदायिक और जातीय दबाव के ऐसे युगल प्रेमियों की रक्षा का दायित्व निभाएगी? मुझे तो इस विषय में सिरे से शंका ही शंका नजर आती है।

यदि हम जातीय भेदभाव और धार्मिक वैमनस्य से मुक्त समाज की कल्पना को साकार करना चाहते हैं तो, ज़रूरत इस बात की है कि आर्य समाज मंदिरों में किए जाने वाले अन्तर्जातीय प्रेम विवाहों को एक निर्बाध, कानूनी मान्यता प्रदान की जाए और ऐसे युगल प्रेमियों को सामाजिक और कानूनी सुरक्षा प्रदान की जाए। आखिर कब तक हम जाति और धर्म के वैमनस्य को पाले रखेंगे। समाजसेवी संस्थाओं को जनहित याचिका के माध्यम से पहल करते हुए इस फैसले पर एक सामाजिक बहस की शुरूआत करनी चाहिए। एक ओर ऑनर किलिंग और जातीय दुर्भावों के कारण युवाओं के साथ होने वाली जानलेवा हिंसा के विरूद्ध कानूनी प्रावधान लाने की पहल न्यायपालिका और सरकार द्वारा की जा रही है और दूसरी ओर इस तरह के फैसले रूढ़िवादिता की दोहरी चाल खेलते नज़र आते हैं। ज़रूरत इस बात की भी है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित इस प्रकार के न्यायिक निर्णयों के मूल्यांकन और समीक्षा की भी कोई व्यवस्था की जाए ताकि प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तनों का मार्ग बाधित न हो। आवश्यक होने पर इस प्रकार के फैसलों के खिलाफ़ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना चाहिए। समाज में खुलकर चर्चा की जानी चाहिए और कानून प्रशासन लागू करने वाली एजेंसियों में इस विषय में जागरूकता फैलाई जानी चाहिए। समय की मांग को देखते हुए जातीय और धार्मिक भेदभाव को खत्म किया जाना चाहिए और ऐसे ताकतों पर अंकुश लगाया जाना चाहिए जो अपनी पदीय सत्ता का इस्तेमाल करते हुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे अमानवीय दुराचारों को बढ़ावा देते हैं।

प्रतिरोध की संस्कृति और मराठी लोकगीत

भारती गोरे

संभ्रांत समाज ने अभिव्यक्ति का अधिकार केवल पुरुषों को दे रखा है। सामाजिक दबाव के चलते कहिए या सुरक्षित रहने की अतीव–उत्कट इच्छा के चलते कहिए, स्त्रियों ने भी स्वयं को अभिव्यक्त नहीं किया। लेकिन अपने आप को अभिव्यक्त करने की इच्छा, एक हाड़–मांसवाला जीवित तत्व होने के नाते, स्त्री में थी ही! एक ओर ऐसा अभिजात्य समाज जो उसे बोलने से रोकता है या फिर उससे वही बातें बुलवाता है जो वह सुनने का आकांक्षी है, तो दूसरी ओर सदियों से मन पर बिंबित किए गए संस्कार जो स्त्री के कुलवती–शीलवती बने रहने में ही उसके अस्तित्व की सार्थकता मानता है–दोनों ओर स्थित इस कुआं–खाई में फंसी स्त्री, लोकगीतों के माध्यम से अपने 'बोलने' की इच्छा पूरी कर लेती है। इस दृष्टि से संपूर्ण भारत में जो लोकगीत लिखे गए, उनका अर्थात् भारतीय लोकगीतों का अध्ययन करने पर पाएंगे कि भारतीय स्त्री विमर्श अपने देसीपन में अतुलनीय प्रतिरोध लिए हुए है।

भारतीय विशेषतः मराठी लोकगीतों में अभिव्यक्त स्त्री–स्वर को पढ़ने के बाद कोई भी तथाकथित संभ्रांत मन चौंक जाएगा। जो भी विचार स्त्री खुलेआम, डंके की चोट पर व्यक्त नहीं कर पाई है, उसे उसने उन गीतों में कह दिया है जो रचयिता–विशेष के नामाभाव के कारण लोकगीत कहलाए। इन गीतों में उसने अभिजात्य समाज की पारंपरिक मान्यताओं को ललकारा है। इनमें विद्रोह और हंसी–ठिठोली में लिपटा आक्रोश इतना कूट–कूट कर भरा है कि सदियों से स्त्री–मन के आईने में बंद तस्वीरें खुलकर सामने आती हैं। मराठी लोकगीतों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था, स्त्री को हरदम अस्तित्वहीन बनाए रखने के लिए रचे गए षड्यंत्र, रीति रिवाजों की आड़ में स्त्री पर हुए अन्याय, सीता–मंदोदरी–द्रोपदी आदि पंचसतिकन्याओं के अंतर्स्वर, ससुराल और मायके को लेकर उसकी भावनाएं, मिथकों की पर्दादारी में छिपी वास्तविकता आदि अनगिनत मुद्दों पर इतनी बेबाक टिप्पणियां मिलती हैं कि एक–एक का जायजा लेना अत्यधिक रोचक और अनुसंधानयोग्य विषय है। आज 'बेटी बचाओ' मुहिम की खूब तूती बोल रही है। बावजूद इसके बेटियों की संख्या घटती ही जा रही है। मंच से बेटी के जन्म का स्वागत करने का आह्वान करनेवाले भी मन ही मन, अपने घर में बेटे के जन्म की ही कामना करते हैं। बस, अपने नाम और अपनी आधुनिक छवि को बनाए रखने की इच्छा के कारण इस बात को खुलेआम बोलकर मुसीबत मोल लेना नहीं चाहते। इसके ठीक विपरीत लोकगीतों में स्त्रियां अपने जीवन में स्त्री–जन्म का स्वागत बड़ी खुशी से करती हैं। सदियों से चलते चले आ रहे लोकगीत इस बात को रेखांकित करते हैं कि स्त्री ने, कभी भी स्वेच्छा से स्त्री–जन्म का विरोध नहीं किया।

'पहिली बेटी आणि तूप–रोटी' (पहली बेटी ऐसी प्यारी मानो घी–रोटी) 'पहिली बेटी आणि धनाची पेटी' (पहली बेटी मानो साक्षात् लक्ष्मी जो परिवार को मान और धन से सदैव संपन्न बनाए रखेगी) जैसी कहावतें स्त्री–जन्म की पक्षधरता करती हैं। यहां बात 'पहली बेटी' की हुई है लेकिन एकाधिक बेटियां हुईं तो चिंता का सबब मानी जाती हैं। यह पुरुषी सोच, पहले भी थी और आज भी है। इस सोच को ठसाठस भरे संस्कारों की उपज मानकर लोकगीतों की स्त्रियां 'संस्कारों' की ही भाषा में स्त्री–जन्म का समर्थन करती हैं–"कन्या झाल्या म्हानोनी, नको घालू खाली मान। तिच्या कारणे बापाला घडेल कन्यादान।"

वे, पुरुषों रचित वेदशास्त्रों में गाई गई 'कन्यादान' की महिमा दिखाते हुए कहती हैं कि 'एकाधिक बेटियां हुईं इस कारण सिर झुकना ठीक बात नहीं बल्कि एकाधिक बेटियों का जन्म तो खुशी की बात है क्योंकि इसी बहाने पिता को कन्यादान का पुण्य कमाने के खूब अवसर मिलेंगे। इस प्रकार के तर्कों से पता चलता है कि लोकगीतों की रचयिता स्त्रियां खूब चतुर रही होंगी और अपने स्त्री होने पर उन्हें अपूर्व गर्व रहा होगा।

कई बार मराठी लोकगीतों में लाग–लपेट के साथ नहीं बल्कि अपनी आवाज को खूब बुलंद कर स्त्री–जन्म का स्वागत किया गया है, पुत्र और पुत्री को समान घोषित किया गया है और इसके लिए कृषि–संस्कृति से जुड़ी

शब्दावली का कुशल प्रयोग भी किया गया है–"जोंधलयापरीस म्या वाढविते तुरी लेकापरीस लेक लई मला प्यारी।" अर्थात्, मैं ज्वार (जो महाराष्ट्र का मुख्य अनाज है) से भी अधिक अरहर की फसल को महत्व देती हूं, ठीक वैसे ही जैसे मुझे बेटे से अधिक अपनी बेटी प्रिय है।

लड़का–लड़की में भेदभाव करनेवालों को लोकगीतों की स्त्री खनकता प्रश्न पूछती है–"लेका परयास लेक, कशानं झाली उणी। सईला किती सांगू, हिरा नव्हं ती हिरकणी।।"
(बेटी की तुलना में बेटी भला कमतर कैसे हुई? कैसे समझाऊं, बेटा हीरा होगा, पर बेटी तो हीरों की खान है।)

जिन माताओं के मन में बेटी का जन्म भय और बेटे का जन्म गर्व पैदा करता है, उन्हें लोकगीतों में कभी समझाया गया है तो कभी दुत्कारा गया है–"लेका परीस ले कशानं झाली उणी, एका कुशीचीच की गं रत्नं ही दोनी।"
(बेटी को बेटे से कम समझना भली बात नहीं, आखिर दोनों रत्न एक ही कोख से व्युत्पन्न हुए हैं।)

अथर्ववेद में उक्ति है कि 'बेटी पैदा होनी है तो कहीं, किसी और के घर में हों। हमारे घर में तो बेटा ही हो।' इस मानसिकता का जवाब लोकगीतों में इस प्रकार दिया गया–"लेकीच्या आईला नका म्हनूसा हालकी। लेकाच्या आईला कुनी दिलिया पालखी।"

(बेटी को जन्म देनेवाली मां को कभी हल्की निगाह से नहीं देखना चाहिए क्योंकि बेटी को जन्म देनेवाली मां के कारण ही, बेटे मां को बहू मिलती है, मान–सम्मान मिलता है।)

आज का अभिजात्य मानस भी जिन बातों को जानता–मानता नहीं (और जाने–मानें भी तो पचाता नहीं) उन बातों को आदिम समय में लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करनेवाली स्त्रियों की आधुनिकता शब्दातीत है।

•

युद्धरत आम आदमी

का अगला अंक

मई, 2015

•

कहानियां

रत्नकुमार सांभरिया

कौशल पंवार, राजेन्द्र परदेसी, उर्मिला प्रसाद

•

उपन्यास

चिलकुरी देवपुत्र (तेलुगु)

•

कविताएं

के. सच्चिदानंदन, ममांग देई

यदुमणि बेसरा, अलीक

शहंशाह आलम, गुलजार हुसैन, राकी गर्ग

•

आलेख

संजीव खुदशाह, रजनी दिसोदिया, आलोका

स्वतंत्र मिश्र, बेबी परवीन, रश्मि चौधरी, संगीता मौर्य

•

निकष

संजीव ठाकुर, अरविन्द कुमार मुकुल, सुमन कुमारी, प्रेमपाल

•

साथ में और सभी स्तंभ

मुद्दा

मोदिनामा : लूट की छूट–लूट सके तो लूट

महेश कुमार

जिस भूमि के इर्द–गिर्द साहित्य जन्म लेता है और संस्कृति उभरती है आज वही भूमि खतरे में पड़ गई है। हर फसल किसानों और ग्रामीण जनता के लिए नई खुशहाली लाती है। यही वह समय होता है जब किसान, आदिवासी, मछुवारे या जमीन से जुड़े सभी लोग फसल से जुड़े त्योहारों को मनाते हैं। इसके इर्द–गिर्द लोक–संस्कृति, लोक संगीत, लोक चेतना और जन साहित्य का जन्म या प्रसार होता है। यानी भूमि सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना का आधार होती है। आज उसी भूमि को पूंजीवादी मुनाफे की बली चढाने की तैयारी मोदी सरकार कर रही है। सरकार विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण करना चाहती है ताकि वह उस जमीन को किसानों से औने–पौने दामों में खरीदकर बड़े पूंजीपतियों के लिए बेरोक–टोक मुनाफा कमाने का रास्ता तैयार कर सके। पूरे देश के किसान सरकार के इस प्रस्तावित संशोधन से सकते में आ गए हैं। वे दिल्ली की सड़कों पर सरकार को चेतावनी देने के लिए उतर गए हैं और कहा है कि अगर इस कानून को पूंजीपतियों के हित में बदला जाता है तो सरकार के खिलाफ जन आन्दोलन होगा। लेकिन सरकार के कानों पर इस चेतावनी से कुछ असर पड़ता नजर नहीं आ रहा है, इसलिए सरकार और उसके प्रबंधक विभिन्न सहयोगी गठबंधन की पार्टियों को मनाने में जुट गए हैं। विपक्ष, जिसमें कांग्रेस, वामपंथी और कुछ अन्य दल हैं, वे तो विरोध कर ही रहे हैं, लेकिन कुछ भाजपा के सहयोगी भी इस विधेयक का विरोध कर रहे हैं।

भूमि अधिग्रहण कानून 2013 और प्रस्तावित 2014 के कानून में क्या फर्क है और क्यों यह देश के किसानों और आदिवासियों तथा दलितों के खिलाफ है, आइए इस पर पहले एक नजर डालते हैं। 2013 के कानून के तहत यह प्रावधान रखा गया है कि अगर सार्वजनिक या निजी परियोजना के लिए भूमि के अधिग्रहण की जरूरत है तो इसे अधिग्रहण करने के लिए भूमि का स्वामित्व वाली आबादी का 80 फीसदी हिस्से की अनुमति होनी चाहिए। अब नए कानून के तहत इस अनुमति की कोई जरूरत नहीं है, यानी सरकार बिना बताए भूमि का अधिग्रहण कर सकती है। इसके मुआवजास्वरूप भूमि के मालिक को मौजूदा जमीन की कीमत का चार गुना दिया जाएगा। यानी अगर आपकी जमीन की कीमत कागजात में 1 लाख है तो आपको चार लाख रुपये देकर आपसे जमीन छीन ली जाएगी। अब उस जमीन पर परियोजना बने न बने इसकी भी कोई दरकार नहीं है और अगर बंटी भी है तो उस जमीन से कमाए जाने वाले मुनाफे में भूमि मालिकान का कोई हक नहीं होगा। न ही उनके लिए या उनके बच्चों को रोजगार देने की कोई गारंटी दी जा रही है। इसका मतलब साफ है कि किसान नकद पैसा लेगा और कुछ वर्षों में वह पैसा खत्म हो जाएगा और फिर वह किसान या आदिवासी का परिवार बेरोजगार बन सड़क पर आ जाएगा। यह कानून अंग्रेजों द्वारा बनाए गए भूमि अधिग्रहण कानून 1894 से भी भयानक है। अंग्रेजों ने जिस तरह से जमीनों पर कब्जा किया और अपने मुनाफे के लिए आदिवासियों और किसानों को उनकी जमीनों से बेदखल किया अब मोदी सरकार भी झूठे विकास के नाम पर अपने सहयोगी पूंजीपतियों के लिए जमीन हड़पना चाहती है ताकि वे भरपूर मुनाफा बटोर सके। अभी हाल ही में एक तथ्य सामने आया है कि जबसे मोदी सरकार सत्ता में आई है अदानी की संपत्ति में 25,000 करोड़ का इजाफा हुआ है। इतना ही नहीं मोदी सरकार ने पिछले वित्तीय वर्ष में देश के बड़े पूंजीपतियों को 5 लाख करोड़ की कर रियायतें दी है और आने वाले वित्तीय वर्ष में ये रियायतें 6 लाख करोड़ को पार कर जाएंगी। यानी पूंजीपति जिनकी पूंजी लगातार बढ़ रही है उन्हें लूट की छूट और बाकी जनता ठन–ठन गोपाल। अगर सरकार जनता की हितैषी होती तो वह कभी भी यह रियायत पूंजीपतियों को नहीं देती और इस पूंजी का इस्तेमाल जनता की तरक्की के लिए किया जाता। लेकिन सरकार ने ऐसा नहीं किया। क्या इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि जब गरीब के रोजगार की बात आती है तो सरकार के पास पैसा नहीं होता है लेकिन वहीं अगर पूंजीपतियों की झोली भरने का सवाल आता है तो दिल खोलकर उन्हें वित्तीय रियायतें दी जाती हैं, उन्हें बैंकों से कर्ज भी सस्ती दरों पर दिलाया जाता है और बेलगाम मुनाफा कमाने के लिए गरीब लोगों से छिनकर देश के बेशकीमती खजाने यानी जमीन को भी उनकी झोली में डाल दिया जाता है। तो मोदी सरकार किसका विकास चाहते है, अब तक तो आप समझ ही गए होंगे।

ओडिया कहानी

बाघ

प्रतिभा राय

अनु. : डा. मंजु शर्मा महापात्रा

अगणीं प्रधान जिस दिन जेल से छूटा उस दिन गांव के किनारे जोड़ी से खड़े इमली के पेड़ के नीचे खड़े होकर सोचने लगा कि वह अब जाएगा कहां? अगणीं की जवान बेटी से बलात्कार करने के जुर्म में, जिस दिन उसके मालिक, 'जमींदार वीखर' को जमानत मिली थी उस दिन उनके समर्थक और आश्रित ग्रामवासियों ने बाहर फूलमालाएं लेकर उसका इंतजार किया था। अगणीं भी सोच रहा था कि उसके स्वागत के लिए भी ग्रामवासी फूलों के ढेर लिए खड़े होंगे। उसने तो मालिक की अविवाहित बेटी से बलात्कार नहीं किया। हां, बलात्कार करने का प्रयास किया था। जमींदार साहब तो प्रमाणों के अभाव में गिरफ्तार तक न हुए। गांववालों के सामने कहीं हथकड़ी न लग जाए, सो पहले ही रुपया–पैसा खर्च करके जमानत करवा ली थी। पहले से ही जमानत करवा लेना क्या पहले से ही रास्ते से मुड़ जाना नहीं है? चोर का ध्यान तो आखिर गठरी पर ही रहता है न। पर अगणीं का बार–बलात्कार का प्रयास ही इतना बड़ा अपराध हो गया। हां ठीक ही तो है, बड़े लोग चावल चबाते हैं, तो कहा जाता है इससे वात–पित्त शांत होता है पर गरीब लोग चावल चबाएं, तो यह उनके पेट की आग का कारण होता है। यह जानकर कि गांव के लोग ईंट–पत्थर मारकर उसका स्वागत करेंगे, उसे यह बात सच लग रही थी। ग्रामदेवी के पीपल के पेड़ की छाया में ईंट, कंकड़–पत्थर जमा कर गांव वाले उसका इंतजार कर रहे हैं। गांव की मिट्टी में कदम रखने के पहले ही वे लोग उसका सिर पत्थरों से फोड़ डालेंगे और बदन के सारे सारे चीथड़े उड़ा देंगे। ऐसा गांव वालों ने प्रण किया है।

अगणीं ने अपने मालिक की कन्या के साथ बलात्कार का प्रयास कर गांववालों की नाक कटा दी है। जिस बच्ची को उसने लाड़–प्यार से बड़ा किया था, उसकी ओर घिनौनी दृष्टि से उसने देखा कैसे? आंखें नहीं फूटीं उसकी? आंख के गोले बाहर नहीं गिर पड़े उसके? छीः छीः अपनी बेटी की उमर की मीना से बलात्कार का प्रयास करने वाले अगणीं के सिर पर वज्र क्यों न टूट पड़ा? जरूर मालिक से बदला लेने के लिए उसने यह कदम उठाया होगा। यदि मालिक ने उसकी बेटी के साथ बलात्कार किया, तो वह भी उसकी बेटी के साथ वैसा ही करेगा। जैसे को तैसा सबक सिखाने के लिए। हालांकि दोनों बर्बरतापूर्वक किए गए कार्य एक समान ही हैं पर अगणीं का कुकर्म अधिक दोषयुक्त व निंदनीय है क्योंकि प्राचीनकाल से ही मालिक लोग अपने अधीनस्थ कर्मचारियों व प्रजाजनों की बहू–बेटियों का शारीरिक शोषण करते आए हैं। वह सब शायद उनके पौरुषत्व की निशानी थी तथा सब न्यायसंगत था। शास्त्रों, पुराणों, इतिहास, भूगोल आदि में भी तो ऐसे प्रमाण मिल जाते हैं। बलवान दानव, दानव ही नहीं सर्वशक्तिमान ईश्वर ने भी मृत्युमानवियों पर ऐसे अत्याचार किए हैं। चाहे इन आंखों ने देखा न हो पर कानों ने तो सुना है। सबल का दुर्बल पर अत्याचार यह सृष्टि का भी तो नियम है।

दुर्बलों का ग्रास कर अनादिकाल से सबलों ने अपनी स्थिति मजबूत कर रखी है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है तो इसमें उसका क्या दोष है? पर दुर्बल कहीं सबल पर अत्याचार करता है? छोटी मछली का मुंह इतना बड़ा कहां होता है कि वह बड़ी मछली को खाएगी? बाघ को हिरण ने खाया, ऐसा कभी किसी ने सुना है? प्रजा ने कभी राजा की कन्या से बलात्कार किया हो ऐसी घटना कभी घटी है? पर अगणीं के साथ वह अघटित घटना घट गई है। अगणीं ने सृष्टि का नियम तोड़ा है। नौकर होकर उसने मालिक की जवान बेटी से बलात्कार का प्रयास किया। अब जेल से छूटकर आ रहा है, पर गांव वालों ने भी तीन बार शपथ ली है कि जीते जी उसे गांव की मिट्टी नहीं छूने देंगे। अगणीं के पैर पड़ते ही गांव की मिट्टी अपवित्र हो जाएगी। अगणीं को तो फांसी होनी चाहिए थी। न जाने किस ग्रह के कारण बलात्कार तथा हत्या के जुर्म में उसे बस

आजीवन कारावास ही मिला। उस जेल में उसकी पूरी जिंदगी पश्चाताप् में कट गई। पश्चाताप् इसलिए नहीं कि उसने बलात्कार का प्रयास किया बल्कि इसलिए कि उसने बलात्कार क्यों नहीं किया। यदि वह बलात्कार करता, तो शायद उसे भी पहले ही जमानत मिल जाती। किसी अच्छे वकील को पैसे देने से वह भी प्रमाण के अभाव में छूट जाता।

मन–ही–मन हंस पड़ा था अगर्णी। प्रमाणों का अभाव तो उन लोगों के लिए हो जाता है, जो अपने अपराध को सिद्ध न होने देने के लिए लाल–पीली आंखें दिखा सकें और जिनके पास लाल पानी पिलाने के लिए बहुत सारा धन हो। अगर्णी के पास क्या है? रसोई में तो सारी बटलोइयां औंधे मुंह पड़ी हैं। तीन पीढियों से तो मालिक के घर की गुलामी चली आ रही है। मालिकों की दया पर तो उसके परदादा, दादा और पिताजी जिंदा थे। उसके लिए तो न घटने वाली घटना घट गई, तभी तो एक से अधिक साक्षी मिल गए। प्रमाण मिल गए। हां, अगर्णी ने न घटने वाली चीज़ घटा दी थी, सो वह जेल जाने से तो नहीं बच सका पर पाप करने से जरूर बच गया। पाप!

फिर एक बार अगर्णी के मुरझाए चेहरे पर मुस्कान झलक आई थी। 'पाप' क्या केवल उसी की तरह गरीब लोगों के बगीचे में उपजता है? बड़े लोगों के लिए क्या 'पाप' कुछ नहीं होता? उसी एक अपराध के लिए एक निर्दोष कहलाकर मुक्त हो जाता है और एक दोषी करार दिया जाता है। अगर्णी कुछ समझ नहीं पाता। छोड़ो वे बातें। गरीब तो सदा ही बिना दोष के अपराधी होता है। पर अगर्णी जैसा धर्मभीरू, ईमानदार और स्वामिभक्त सेवक अपने मालिक की बेटी के प्रति ऐसा जघन्य पाप करे, जिसे उसने बचपन से ही लाड़ से पाला–पोसा था। क्या सचमुच उसका यौवन अगर्णी को कामोन्मत्त कर गया था? बात सोचते ही अगर्णी को उबकाई आने लगती है। पाप–बोध से उसके पेट में मंथन–सा होने लगता है। उसका मन और विवेक तो उसका विश्वास न करेगा पर और पांच लोग क्यों विश्वास करने लगे? लोग तो जो देखेंगे वही सच मानेंगे ना। उसे झुठलाने का साहस अगर्णी में कहां है?

कामवासना नहीं बल्कि प्रतिशोध की ज्वाला ने अगर्णी को अंधा कर दिया था। अगर्णी नौकर है तो क्या? उसके अंदर की भावना भी क्या नौकर है? क्या अगर्णी पिता नहीं है? क्या पौरुषत्व उसके अंदर नहीं? जो दूध–दही खाता है क्या पौरुषत्व उसी के अंदर होता है? जो साग–पखाल (भात में पानी डालकर खाना) खाता है वह क्या नपुंसक होता है? अगर्णी भी बदला ले सकता है, अपना पौरुषत्व दिखा सकता है। अपनी बेटी के साथ बलात्कार होने पर एक बाप की क्या मनोदशा होती है, क्या यह मालिक को जतला देना अस्वाभाविक बात है? इस बात को जज साहब क्यों नही समझ सके? उसके वकील में इतना दम ही कहां है जो उसको समझा पाता?

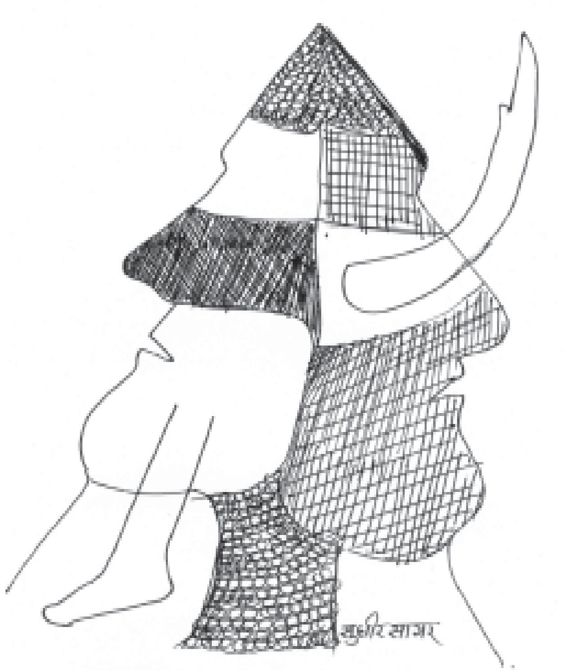

उस दिन उसकी जान–सी प्यारी बेटी का खून चूसकर, पोछ कर मुंह, साफ कर शुभ्र धवल खादी पहन, अधपके बालों में कंघी कर और गांधी टोपी लगा जमींदार साहब ने बयान दिया था– "मैं, गांधीवादी विनोबापंथी, धर्मप्राण, समाज–सेवी हूं। अबलाओं के लिए चलने वाले स्वयंसेवी संस्थान 'सबला' का मैं प्राणप्रतिष्ठाता और अध्यक्ष हूं। मेरे नौकर अगर्णी की बेटी का शरीर, मेरे ही अन्न से निर्मित था। मेरी बेटी मीना की देखभाल कर, हमारी ही जूठन खाकर महुलि बड़ी हुई थी। मैं उसके पिता समान हूं। वह मुझे मालिक न कहकर मीना की देखा–देखी 'बाबा' बुलाती थी। क्या आप विश्वास कर सकते हैं कि मेरे जैसा धर्मात्मा, समाजसेवी, गांधीवादी ऐसा जघन्य कांड कर सकता है? यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि एक ऐसी घृणित घटना के साथ मेरा नाम जोड़ा जा रहा है, कलियुग में दूसरे की भलाई करने पर बुराई ही मोल लेनी पड़ती है। पता नहीं किस राक्षस ने बेचारी बच्ची को मार डाला? मैं ठीक उसी वक्त अगर्णी के घर

की तरफ उसका हाल–चाल पूछने गया था। मैं अगणीं का मालिक हूं। उसका भला–बुरा पूछना क्या मेरा कर्तव्य नहीं है? वहां अगणीं की बेटी महुलि मरी पड़ी थी। बात फैल जाने पर अगणीं की बदनामी होगी, इसलिए इस बेवकूफ को मैंने समझा–बुझाकर लाश का अंतिम संस्कार करवा दिया था। बस, जज साहब मेरा दोष इतना ही है। बाद में मेरे विरोधियों ने अगणीं को उकसा कर मेरे विरुद्ध रपट लिखवा दी।"

वास्तव में मालिक के विरोध में कोई भी प्रमाण नहीं था। महुलि तो मुट्ठी भर राख में बदल गई थी, जब तक कि रिपोर्ट लिखाई गई। अब राख तो बोलती नहीं।

अगणीं ने भी पहले थाने में रिपोर्ट नहीं लिखवाई थी। सोच रहा था कि इससे लाभ क्या होगा? बेटी तो शमशान से वापस नहीं आ जाएगी? गंदगी को फेंटने से क्या लाभ? पर अगणीं के अंदर का पिता, मालिक के पौरुषत्व को क्षमा नहीं कर सका। रात को उसे नींद नहीं आई। सदा दुःस्वप्न घेरे रहे सपने में, महुलि का नग्न प्रेत रो–रोकर गली, रास्तों में भटकता दिखाई देता। वह सपने में कहता–"मैंने कौन–सा दोष किया था बापा (पिताजी), जो मैं इस सुंदर पृथ्वी पर जीवित न रह पाई? भात और कपड़े के सिवा तो मेरी और कोई मांग न थी। तुम क्या इस बर्बरता का बदला नहीं लोगे बापा? क्या मेरी आत्मा को थोड़ी भी शांति न दोगे बापा?"

एक नहीं, दो नहीं, पूरे पंद्रह दिन अगणीं यह दुःस्वप्न देखता रहा। उसके अंदर प्रतिशोध फुंफकारने लगा था। पर वह जमींदार साहब को कैसे सज़ा देगा? अगणीं ने थाने में शिकायत दर्ज करवाई थी पर प्रमाण कहां है? जमींदार साहब कीड़े वाले बेर की तरह ऊपर से चिकने पर अंदर से घिनौने हैं– यह बात वह अदालत में सिद्ध न कर सका। पर अगणीं हार मानने वाला नहीं है।

उस दिन अगणीं के सिर पर भूत सवार हो गया था। उस दिन मीना घर पर अकेली थी, रोज़ की तरह अगणीं उस दिन भी घर की चौकसी पर तैनात था। बचपन से ही उसने मीना की देखभाल की थी। एक मक्खी, मच्छर तक उसने उस पर नहीं बैठने दिया था। गर्मी–सर्दी की मार से सदा उसे बचाया था। कितने प्रयत्न और कितने प्यार से अपनी बेटी से भी अधिक संभालता आया था वह उसे। इसलिए जमींदार साहब और जमींदारनी जी निश्चिंत होकर अपने मित्र के घर गए थे। अगणीं ने जमींदार साहब के विरूद्ध शिकायत दर्ज करवाई थी, पर फिर भी जमींदार साहब यह कैसे नहीं सोच सके कि अगणीं भी अपनी बेटी पर हुए अत्याचार का बदला ले सकता है। शायद इसलिए कि अगणीं अभी भी उनके दानों पर पलने वाला नौकर था और वे थे उसके मालिक। नौकर क्या बदला नहीं ले सकता। क्या उनका खून बर्फ होता है। गरीब का पितृत्व क्या पखाल के बर्तन (पानी भात का बर्तन) में पतला हो जाता है? शायद इसलिए पहले जमानत मिल जाने के बाद उन्होंने अगणीं की पीठ थपथपाकर साथ ही हाथ में पैसे धरते हुए कहा था, "मैं जानता हूं अगणीं जब मुसीबत आती है तो बुद्धि उल्टी हो जाती है। तभी तो इतने दिनों का विश्वासपात्र नौकर होते हुए भी तूने दूसरों की बातों में आकर मेरे विरुद्ध शिकायत दर्ज करवाई। जिस पेड़ की छाया में तू बैठा था, उसी की जड़ों पर कुल्हाड़ी चलाना तेरी मूर्खता नहीं तो और क्या है? अरे महुलि की चिता के स्थान पर अब घास उग आई है। पर मेरी पत्नी और बेटी जिन्दा नहीं रहेंगी क्या? जिनने तुझे सिखाया है वे तेरे पेट में दाना डालेंगे क्या? अरे इस गांव में किसमें इतना दम है, जो नौकरों के वंश का पोषण कर सके? अच्छा छोड़। मैंने तुझे माफ किया। अच्छा बनकर रह। तेरे बाद तेरे लड़कों को नौकर रखने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। कुत्ता आदमी को काटता है तो क्या आदमी भी कुत्ते को काटेगा?"

सचमुच में अगणीं चुपचाप खड़ा था। वह मालिक के घर पहले की तरह काम करने लगा। जमींदार साहब शायद अपना पाप भूल गए थे। उनके लिए ऐसी बातें बाएं हाथ का खेल थीं, पर अगणीं उस पाप के प्रभाव को कैसे भूल पाता? क्या अगणीं नहीं जानता कि मनुष्य का खून पीकर ही जमींदारी फलती है?

गांव में महुलि की उम्र की किसी भी लड़की को देखकर उसकी आंखों के सामने महुलि का वह वीभत्स मृत शरीर नाचने लगता। अगणीं का पतला खून गाढा होने लगता। उसके ठंडे खून में उबाल आने लगता। विशेषकर मीना को देखते ही महुलि की स्मृति और भी तीव्र और असहनीय हो जाती। उसने तो मीना और महुलि में कभी भी अंतर न जाना था पर जमींदार साहब को अंतर कैसे लगा? हां दोनों की आंखें एक हो सकती हैं पर दृष्टिकोण तो अलग–अलग है ना।

अगणीं क्या कभी जमींदार नहीं बन सकता? जो बात जमींदार में है क्या उसमें नहीं है? अगणीं धन से न सही पर मन से तो जमींदार बन सकता है। और उस दिन अगणीं ने खुद को जमींदार मान लिया था। खुद को जमींदार न मानकर वह यह जघन्य कांड कैसे कर पाएगा? जमींदार ने विदेशी माल चढ़ाया था, अगणीं ने देसी माल। आजकल गांवों में जीवनरक्षक दवाइयां भले न मिलें पर देसी माल ढूंढने पर मिल जाएगा। अगणीं की

आंखों से चिंगारियां निकल रही थीं। वह घर के अहाते में घुस पड़ा। ग्रीष्म की प्रखर दोपहर। मीना नहाकर धूप में बाल सुखा रही थी। अगणीं ने अंदर घुसकर सिटकनी चढ़ा दी थी।

आवाज़ से अचानक जैसे मीना का कोई स्वप्न टूट गया था। उसने अपनी नग्न पीठ को आंचल से ढंक लिया। मीना ने जैसे ही पलटकर देखा, उसे सिर से पैर तक निगल जाने वाली लाल–लाल निगाहों से एक बाघ घूर रहा था। अगणीं ने मीना को दुलार भरी नज़रों से अनेक बार देखा था। उन नजरों से मीना ने वात्सल्य ही झरते हुए नहीं देखा था बल्कि अपने हृदय से उसे महसूस भी किया था। महुलि की मृत्यु ने मीना को भी मर्माहत किया था। उसने अगणीं चाचा को अनेक बार सांत्वना दी थी–"महुलि तो अपना गला काटकर मर गई। चली गई तुम्हें छोड़ के। पर मैं तो जिंदा हूं। क्या मैं तुम्हारी बेटी नहीं?"

पर आज की निगाहों से वात्सल्य का गंगाजल नहीं बल्कि प्रतिशोध की ज्वाला टपक रही थी। अगणीं भूत–प्रेत–सा भयानक दिख रहा था। बचपन में वह कई बार बाघ की – सी आवाज़ निकालकर उसे झूठ–मूठ डराकर, भात खिलाया करता था। पर आज का यह रूप झूठ–मूठ का नहीं था। मीना को समझते देर न लगी कि अगणीं चाचा अपनी पहचान भूल गया है एवं एक भयंकर पशु उसके अंदर प्रवेश कर चुका है। वह पशु केवल मांसाहारी ही नहीं बल्कि रक्तपिपासु भी है। वह पशु, महुलि की मौत का बदला लेने के लिए वचनबद्ध है। मौत के भय से उसके शरीर में सिहरन दौड़ गई थी। उस भय के सामने अन्य सारी बातें उसे तुच्छ लग रही थीं। नहीं, नहीं मीना मरना नहीं चाहती। वह जिंदा रहना चाहती है। जिंदा रहने के लिए वह कुछ भी कर सकती है। नुकीले पंजों वाले बाघ को अपनी ओर बढ़ते देख वह बचने का उपाय सोच रही थी। अगणीं का इंसानी रूप गायब हो रहा था। उसके हाथ–पैर बाघ के पंजों में बदल रहे थे, उसके नाखून और दांत बाहर निकल आए थे। अब वह पूरी तरह जंगली बाघ में तब्दील हो चुका था। मीना को अगणीं पूरा बाघ नज़र आ रहा था 'पर अगणीं' के अंदर का इंसान सहजता से शरीर बदलने को प्रस्तुत न था।

स्वयं को बदलने में इतना कष्ट और इतनी यंत्रणा! अगणीं यह नहीं जानता था कि मीना को मारने से पहले उसे अपने अंदर के इंसान की इतनी निर्ममतापूर्वक हत्या करनी पड़ेगी। उसे नहीं पता था कि मनुष्य से पशु बनने में इतनी मर्मांतक पीड़ा होगी। फिर रोज–रोज इंसान पशु कैसे बन जाते हैं? शायद बहुत से लोग सचमुच में पशु होते हैं। वे मनुष्य का जामा पहन, निर्भय हो मनुष्य समाज में घूमा करते हैं। इसलिए काया परिवर्तन उनके लिए एक साधना नहीं बल्कि एक विलास है। अगणीं का सबसे बड़ा दोष यही था, उसके और गर्मी में तपे काले चमड़े के नीचे एक असहाय–सा इंसान दुबका बैठा था। जो कोशिश करने पर भी वह अपना स्थान छोड़ने पर राजी न था। अगणीं की प्रतिज्ञा ने उसे कठोर बना दिया था। अगणीं ने समझ लिया था कि अपना पौरुषत्व दिखाने के लिए उसे खुद को मार डालना होगा और अंदर के पशु को जिलाना होगा। वह जमींदार को बतला देगा कि भात–दाल खाए कमज़ोर शरीर में भी कितनी ताकत होती है। एक नौकर भी कितना मर्द हो सकता है। वे आजतक उसे मरा हुआ सांप समझते रहे, पर वह वास्तव में ऐसा नहीं है। इंसान और जानवर की लड़ाई में अगणीं पागल–सा हो गया था। ओफ्फ! उसने अपने कपड़े फाड़ लिए, फिर अपने ही नाखूनों से अपना शरीर और मुंह नोंच लिया। आंगन से एक डंडा लेकर वह खुद को पीटने लगा था। उसने अपनी चमड़ी उधेड़ ली थी। लहूलुहान हो गया था वह। उसने अगणीं नामक व्यक्ति को लहूलुहान कर दिया था। अब तो केवल उसका रूप ही नहीं बल्कि उसके भाव भी बाघ बन चुके थे। संसार भर के पाशविक उल्लास को याद कर अपने अंदर के जानवर को जीवित कर, बाघ–सा गरज कर कुत्सित लालसा से वह मीना की ओर झपटा। इस बीच मीना ने अपने को बचाने का उपाय सोच लिया था। उसने स्वयं को निर्वस्त्र कर अपने को बाघ के हाथों सौंप दिया था। वह बोलती चली जा रही थी–"तेरा जैसा मन है कर अगणीं, पर मेरे बाप ने जैसे महुलि को जान से मार दिया था, तुम मुझे मत मारना। मैं जिंदा रहना चाहती हूं...।"

मीना की नग्न देह देखकर अगणीं का मन फिर परिवर्तित हो गया था। उसने गुस्से की ज्वाला में जलते हुए आंख बंद कर मीना को नीचे गिराकर उस पर लात–घूसे बरसाने शुरू कर दिए थे। फिर उसने साड़ी उठाकर उसके मुंह पर दे मारी थी। वह चिल्ला रहा था–"मुझे पता है तू महुलि नहीं है। तू मीना है। तूने महुलि का भ्रम पैदा करने के लिए मुझे अपना यह वीभत्स रूप दिखाया है। महुलि के साथ मैं जानवर नहीं हो सकता, तू यह अच्छी तरह जानती है। इसलिए तूने यह मायाजाल मेरे सामने बिछाया। छीः! तू मर नहीं गई मीना। जिंदगी से तुझे मोह। अरे दुःख–भूख में पली मेरी महुलि को क्या ज़िंदगी से मोह न था? एक पशु से लड़ते–लड़ते मर गई बेचारी। दूध मलाई खाकर तूने

ज़िंदगी को क्या समझा—क्या केवल शरीर से जिंदा रहना। अब तो मौत ही तेरा एकमात्र पुरस्कार है। पहले उठ? साड़ी पहन। मैंने कहा उठ साड़ी पहन।"

अगणीं जमीन पर पड़ी मीना को झिंझोड़े जा रहा था। मीना तब भी भय से कहे जा रही थी—"तुझे जो करना है कर अगणीं चाचा, पर जान से मत मारना। मरने से मुझे बहुत ड़र लगता है!"

"तो तू मर...मर...मर" कहकर अगणीं चीखें जा रहा था। वह उसे खींचतान कर साड़ी पहनाने की कोशिश कर रहा था। अब वह ज़ोर—ज़ोर से रोने लगा था। रो—रोकर कहे जा रहा था—"अरी पागल तूने यह सोच भी कैसे लिया कि, जिसे मैंने खुद गोद खिलाया, लाड़—प्यार कर बड़ा किया, जिसकी इज्जत पर मैं खुद चील—सी निगाह रखता रहा, जिसे अपने डैनों में सुरक्षित रखा, मैं उसकी इज्जत ले सकता हूं। अपनी बेटी की मौत का बदला क्या मैं तुझसे लूंगा? छीः छीः क्या यही तेरी शिक्षा—दीक्षा है? क्या जीवन तेरे लिए इतना मूल्यवान है", आज यदि मेरी जगह कोई और होता, तो क्या अपनी इज्जत बेचकर बैठ जाता पगली? जमींदार साहब और जमींदारनी जी के लौट आने पर मैं उन्हें क्या जवाब देता? हां यह सही है कि मेरे अंदर का जानवर हूंकार मार रहा था, तभी तो मैंने खुद को नोंच—खसोंट कर उसे खत्म कर दिया—तुझे दिखा नहीं क्या? साड़ी पहनकर ठीक से बैठ जा मीना, माता—पिता लौट रहे होंगे। बेहोश मीना के शरीर को साड़ी से लपेटता हुआ अगणीं खुद को धिक्कार रहा था—"मैं पापी ये क्या करने चला था? बाप के कुकर्म का दंड बेटी भोगे क्या यह न्याय है? ओफ्फ् मेरे हाथों आज कैसा अनर्थ होने जा रहा था?"

जमींदार साहब, जमींदारिन जी और गांववालों की भीड़ लग गई थी आंगन में। पुलिस आ गई थी। फटे—चिथड़े कपड़े पहने अगणीं को हथकड़ी पहना दी गई थी। गांव की गलियों से ले जाते समय लोग उस पर थूक रहे थे व व्यंग्य कस रहे थे। सभी के मुंह से प्रायः निकल रहा था—"मालिक की जूठन पर पल रहे नौकर की हिम्मत तो देखो! मालिक की लड़की के साथ....?"

चारों ओर से लोग उस पर पत्थर भी फेंक रहे थे। अगणीं चुपचाप सिर नीचा किए चला जा रहा था। अगणीं अपना पाप स्वीकार किए जा रहा था—"हां, हां, बदले की आग मेरे अंदर जल रही थी। उसी आग को बुझाते—बुझाते मैं खुद जल गया। खुद को राख कर डाला। जिन हाथों से मीना को पाला—पोसा था, उन्हीं हाथों से मैंने उस पर घूंसे, थप्पड़ बरसाए। बेचारी बेहोश हो गई थी, यह सब सहकर! बस इससे ज्यादा मेरे मन में और कुछ भी न था। अब मुझे जो दंड देना है सो दे लो।"

अगणीं की बात सुनकर अदालत में अट्टहास गूंज रहा था। अगणीं की सफाई ही उसे दोषी प्रमाणित कर रही थी। उसे आजीवन कारावास का दंड हो गया था। वह मन—ही—मन पछता रहा था, यदि उसे बदला लेना ही था, तो सच में ही बाघ बन खून पी जाता। क्यों झूठ—मूठ बाघ बन वह बेटी जैसी मीना को डराता रहा।

उसे जेल हुई, इसके लिए उसे कुछ पश्चाताप् न था क्योंकि उसी की तरह अनेक अगणीं प्रमाणों के अभाव में जेल भोगते हैं। हर रोज़ सौ—सौ महुलि कामवासना की शिकार होती हैं। सौ—सौ जमींदार यूं ही कुकर्म कर, पहले जमानत पाकर समाज के जंगली रास्तों में खुलेआम घूमते रहते हैं। यह कोई नई बात नहीं। ऐसी घटनाएं तो आजकल होती रहती हैं और आगे भी होती रहेंगी। यह सदियों से घटता आ रहा है। चाहे वह न्याय हो या अन्याय, समाज उसे मुंह बंद कर स्वीकार कर लेते रहा है। इसे प्रकृति का नियम कहकर ही स्वीकार कर लेना होगा। 'बाघ', घास नहीं मांस खाता है। पर खूंटे से बंधा पशु, मांस नहीं खाता, खून नहीं पीता बल्कि जूठन खाता है, घास—फूस खाता है। पर अगणीं ने कैसे सोच लिया कि वह पशु नहीं बाघ है! चाहे कुछ क्षणों के लिए ही क्यों न हो, उसने खुद को बाघ सोचकर मांस खाने का प्रयास कर प्रकृति के नियम को भंग किया है। तभी तो वह दंड भोग रहा है।

जेल से छूटते समय उसके अंदर का झूठा बाघ खत्म हो चुका था। अब वह फिर पशु बन डंडे सहेगा, समाज की सेवा करेगा। वह समाज के नियमों को मानकर चलेगा, तो उसे दुःख नहीं सहने पड़ेंगे। पूरे चौदह साल जेल में खून—पसीना बहाकर उसने झूठे बाघ को खत्म किया है। अब वह संकल्प ले चुका है कि जेल से बाहर जाकर वह गांववालों की सेवा करेगा और बाकी समय भजन—पूजन में बिताएगा।

पर गांव के किनारे पहुंचते ही गांव वाले उस पर ईंट—पत्थर बरसाने लगे थे। गांव में उस जैसे पापी के लिए कोई जगह नहीं। यही प्रकृति का नियम है। प्रकृति के इस नियम को मानकर अगणीं वहीं गांव के किनारे पर गिर पड़ा था। वह सो चुका था। इतने विषादपूर्ण जीवन में सचमुच वह बाघ की चमड़ी—सा दिखने लगा था। पर उसके चारों ओर जमा गांव के पशुओं को उसके घावों से रिसने वाले खून से पता चल गया था कि 'मनुष्य' का ही खून है।

●

मराठी नाटक

बिल्कुल खैरलांजी

प्रज्ञा दया पवार

अनुवाद : डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

अंक – पहला
दृश्य – पहला

[समय : शाम के सात बजे; अमिताभ बनसोडे का घर, कलात्मक रूप से सजा हुआ ड्राइंग रूम, पुस्तकों की रैक, कुछ चुने हुए पुरस्कारों के मानचिह्न, डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर की ध्यान आकर्षित करने वाली तस्वीर दीवार के बीचोंबीच में]

(फोन की रिंग बजती है)

अमिताभ : हैलो, कौन बोल रहा है? हां, हां, बोलिए.... नमस्कार.... हां, हां, हूं, हूं, मैं घर पर। प्रतीक्षा कर रहा हूं आपकी।
(फोन रखता है। सोफे पर बैठता है। हाथ में पुस्तक। पढ़ रहा है। इतने में दरवाजे पर की बेल बजती है। वह उठकर दरवाजा खोलता है। उसकी पत्नी प्रा. वैशाली गजभिये भीतर आती है।)

अमिताभ : हैलो,

वैशाली : कैसा ट्रैफिक है! आधे घंटे तक फंस चुकी थी मैं उसमें।
(वह भीतर से पानी लाकर देता है।)

अमिताभ : थक चुकी हो। रुको, मैं बढ़िया चाय बनाता हूं।

वैशाली : नहीं रे; बैठ यहां पर, मैं बतलाती हूं तुझे, क्या हुआ आज कॉलेज में। आज राजनीतिशास्त्र विभाग का एक कार्यक्रम था। रिटायर्ड कर्नल सहस्त्रबुद्धे जी का व्याख्यान था। व्याख्यान के आरंभ में ही उन्होंने कहा–"अगर यहां कोई मुसलमान छात्र हों तो वह यहां से निकल जाएं क्योंकि मैं जो बोलूंगा, वह उन्हें शायद पसंद नहीं आएगा। मेरा विषय ही ऐसा है। 'भारत के सम्मुख सुरक्षा से संबंधित चुनौतियां।' वस्तुतः मैं किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाना नहीं चाहता। परंतु मेरा व्याख्यान सुनकर अगर किसी को तकलीफ हो रही हो तो मेरी मजबूरी है। तुझे बतलाती हूं अमू, मुझे इतना गुस्सा आया था कि लगा कि मैं उठकर घोषित कर दूं कि, मैं मुसलमान हूं ओर तुरंत वहां से निकल जाऊं। आसपास बैठे प्राध्यापकों पर नजर दौड़ाई मैंने। परंतु आश्चर्य! वहां बैठे किसी को भी इसमें कुछ भी गलत नहीं लग रहा था। पर मैं बेचैन थी। व्याख्यान के बाद खुलकर चर्चा थी। कोई भी बोल नहीं रहा था। फिर मैंने ही शुरुआत की–"आपकी अपनी प्रस्तुति में केवल मुसलमानों को लक्ष्य–टारगेट–करने का कोई कारण नहीं था। आपने कहा कि, मुसलमान ऐसा आचरण करते हैं क्योंकि उनका धर्म उन्हें ऐसा आचरण करने के लिए कहता है। यह ठीक नहीं है। न आप इस्लाम को समझ पाए हैं और न मुसलमानों को। कोई भी धर्म सर्वेसर्वा बन मनुष्य जीवन के आचरण को–सभी स्तरों पर–नियंत्रित नहीं कर सकता। धर्म हमेशा प्रस्थापित, सत्ता, अर्थ और राजनीति के हाथों में हाथ डालकर अपना झंडा फहराते रहता है।" तुझे बताऊं, मैं जब बोल रही थी तब

उनका गुस्सा बढ़ते जा रहा था।

अमिताभ : फिर क्या कहा उन्होंने? तुम्हारी पिटाई के लिए दौड़े तो नहीं ना वे? इनका ऐसे ही होता है। विवाद के लिए कोई मुद्दा नहीं रहा कि पिटाई पर आते हैं।

वैशाली : तो ये महाशय, कुरआन का यह आयत, वह आयत पढ़कर बतलाने लगे। अरुण शौरी की उस पुस्तक के ये उद्धरण! अत्यंत चालाकी से, ठीक–ठीक परंतु महत्वपूर्ण संदर्भों से काटकर उपयोग में लाई गई आयतें। कुरआन का अपनी सुविधा के अनुसार पठन और फिर अर्थहीन लंबी–लंबी व्याख्याएं–उन्होंने शुरू की कि, क्या कहें? अंततः मैं परेशान होकर फिर खड़ी हो गई। शौरी जी कुरआन की कैसी गलत व्याख्याएं कर रहे हैं इसे बतला ही दिया मैंने उन्हें, संदर्भों के साथ। मेरी टिप्पणी सुनकर वे परेशान हो गए। उनके चेहरे पर की रौनक ही गायब! खैर, यह सब कुछ रहने दे। आनंद जी का क्या हुआ? वे आ रहे हैं न, हमारी ओर?

अमिताभ : हां, अभी थोड़ी देर पहले ही फोन आया था, उनका! आएंगे अभी यहीं बहन के पास, आए हैं वे।

वैशाली : मैं पोहा बनाने की तैयारी करती हूं।

अमिताभ : तैयारी कर रक्खी है मैंने! तू केवल छाक दे दे!

वैशाली : ओके बाबा! मैं फ्रेश होकर आती हूं।

अमिताभ : अभी–अभी तो आई हो। तो थोड़ी देर बैठ जाओ न मेरे पास!

वैशाली : नहीं, जाती हूं मैं। यह क्या रे तेरा हमेशा–हमेशा, नजदीक आ, यहां बैठ, मत जा, रुक ना जरा।

(वह हंसते–हंसते भीतर जाती है। वह फिर से किताब में उलझ जाता है। बेल बजती है। अमिताभ उठकर दरवाजा खोलता है। दहलीज पर आनंद भुस्कुटे। भीतर आते हैं। आते–आते पूरी नजर घर पर दौड़ाते हैं।)

अमिताभ : आइए, आइए, आनंद जी।

आनंद भुस्कुटे : घर सुंदर है आपका! इंटीरियर किसने किया है?

अमिताभ : यह सब वैशाली ने ही किया है। वैशाली, मेरी पत्नी। वह कालेज में इतिहास पढ़ाती है। परिचय होगा ही आपसे उसका। अभी–अभी आई है वह कॉलेज से।

आनंद भुस्कुटे : वा! वा! बाय द वे, लेखन के अलावा आप और क्या करते हैं?

अमिताभ : नहीं। इन दिनों विशेष कुछ नहीं। एक सीरियल का प्रोजेक्ट आया है मेरे पास। उस पर काम कर रहा हूं। परंतु उसका कुछ सच नहीं है। व्यावसायिक पद्धति का काम करने का मेरा स्वभाव भी नहीं है।

आनंद भुस्कुटे : हां, यह भी सच है। यूं भी आपकी बैकग्राउंड आंदोलन की ही रही।

अमिताभ : हमारा घर ही आंदोलन का केंद्र रहा। पिताजी पैंथर के ईमानदार कार्यकर्ता। पैंथर टूटने के बाद वे ढाले के साथ रहे। परंतु लंबी उम्र नहीं मिली उन्हें! किडनी फैल्योर हो गए। मेरा बड़ा भाई नाम–परिवर्तन के आंदोलन में था, समाजवादियों के साथ! मंत्रालय में ही है वह नौकरी पर! मेरा सारा बचपन इसी दौड़–धूप में गया। तब से लिखने का शौक। कॉलेज में नाटक भी करता था। फिर बाद में काफी सोच–विचारकर दलित रंगमंच का कार्यकर्ता हो गया। फुलटाइम। कितने नुक्कड़ नाटक, एकांकिकाएं, नाटक किए। तन माजोरी, कारान, थांबा, रामराज्य येतयं, टक्का ऐसे अनेक। बाद में तो सभी आंदोलन ही ठंडे पड़ गए। हां, कहानियां लिखता रहता हूं, लगातार!

आनंद भुस्कुटे : हां, हां पता है मुझको। आपका कहानी संकलन है न, मेरे कलेक्शन में। और हां, आपका एक लेख भी पढ़ा है मैंने इधर।

अमिताभ : कौन–सा?

आनंद भुस्कुटे : वह टाईम्स में प्रकाशित। आपने सही ही लिखा है। *(डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर की तस्वीर*

की ओर देखते हुए।) पचास वर्ष हो गए आम्बेडकर को जाकर। परंतु दलित आंदोलन ने कभी बुनियादी प्रश्न अपने हाथों में लिए ही नहीं। बहुत स्पष्ट और ठीक–ठीक लिखा है आपने। आपसे सच कहूं, वह लेख मैंने पढ़ा और तभी मैंने तय किया कि, मेरी इस 'खैरलांजी' फिल्म को आप ही न्याय दे सकेंगे। और परसो का आपका वह भाषण, विक्रोली के धम्म् परिषद् में किया हुआ। वाह वाह, पर तो धधरता हुआ सुरमा ही था–सुननेवालों के लिए। आपके उस साहस ने तो खिंच लाया है मुझे आप तक!

(वैशाली केश पोंछते हुए बाहर आती है। उसकी वेशभूषा पूर्णतः कैजुअल)

अमिताभ : यह वैशाली गजभिये, मेरी पत्नी!

आनंद भुस्कुटे : गजभिये?

अमिताभ : हां, शादी के बाद उसने मैके का नाम नहीं बदला है।

आनंद भुस्कुटे : *(वैशाली को संबोधित करते हुए)* नमस्कार, अच्छा लगा मुझे यह। और हां, आपका इंटीरियर भी बहुत अच्छा लगा मुझे। कुछ कोर्स वगैरह किया है क्या आपने?

वैशाली : नहीं जी, ऐसा ही किया है अपनी पद्धति से। कम पैसों में बिठला ना था सब कुछ। इसलिए शायद हुआ होगा ऐसा।

आनंद भुस्कुटे : हां, यह भी सच है। नहीं तो कुछ लोगों के घर एकदम होटल की तरह चमचमाते रहते हैं।

अमिताभ : अब क्या कहें जी। हमारे पास कहां होता है पीढ़ी–दर–पीढ़ी चला आया पैसा घर चमचमाने के लिए? नौकरी में आई हुई यह दूसरी पीढ़ी है हमारी। अब कहीं हमारे अपने घर हो रहे हैं।

आनंद भुस्कुटे : *(चर्चा बढ़ाने पर उत्सुकता बतलाते हुए)* ठीक है। बैठिए ना मैडम आप।

वैशाली : पांच मिनट में आती हूं मैं पोहा लेकर।

आनंद भुस्कुटे : अजी, यह सब किसलिए? रहने दीजिए ना! अभी–अभी सरला के यहां कुछ खाया है। सरला, मेरी छोटी बहन, यहां आपके घर के निकट ही रहती है।

वैशाली : ऐसे कैसे? पहली बार आए हैं आप हमारे यहां। हमें भी तो खाना है।

(वैशाली जाती है।)

आनंद भुस्कुटे : सुनिए अमित जी, मैंने जब पहली बार आपको पढ़ा था ना तभी मैं आपके लेखन में स्थित स्पार्क को महसूस कर चुका हूं। औरों की तरह आप केवल आक्रोश, वेदना, नारेबाजी ऐसा कुछ करते नहीं। आज जो घटित हो रहा है, उसका बहुत ही संगतपूर्ण क्रिटिक आपके लेखन में होता है।

अमिताभ : मुझे क्यों क्रेडिट देते हैं आप। बाबासाहेब द्वारा दिया गया कृति–कार्यक्रम कहां कार्यान्वित हुआ है आजतक, पूर्ण रूप से? आज की चुनौतियों से सीधे भिड़ने की ताकत तथा काल सुसंगत दूरदृष्टि थी उनमें।

(वैशाली पोहा की डिशेस, बिस्कुट और चाय का फ्लास्क लेकर आती है। सर्व करती है।)

आनंद भुस्कुटे : *(खाते–खाते)* वा! बढ़िया हो गए हैं पोहे! चलिए, अब मुख्य विषय की ओर मुड़ते हैं।

(वैशाली और अमिताभ दोनों भी सावधानी बरतते हुए)

आनंद भुस्कुटे : फोन पर तो मैंने आपको केवल सूचना ही दी थी कि मुझे 'खैरलांजी' पर एक फिल्म बनानी है। उसकी पटकथा आप लिखें, ऐसी मेरी इच्छा है। इस विषय को आप ही न्याय दे सकते हैं–ऐसा मुझे लगता है।

अमिताभ : परंतु मैंने आजतक कोई पटकथा नहीं लिखी है। मैंने तो आजतक कोई नाटक भी नहीं लिखा है।

आनंद भुस्कुटे : आप उसकी चिंता मत कीजिए। कहानी का तो कोई प्रश्न ही नहीं है, 'खैरलांजी' पर फिल्म करनी है। मेरे दिमाग में एक फ्रेमवर्क है। पहले मैं उसे आपको सुनाता हूं।

वैशाली : मतलब इस पर आपने पहले कुछ लिखा है क्या?

आनंद भुस्कुटे : नहीं, नहीं, मैंने तो कुछ भी नहीं लिखा है। लेखन तो आपको मतलब अमित जी को ही करना

है। अर्थात् अगर उन्हें यह स्वीकार हों तो। वैसे मैंने सभी रिपोर्टस् पढ़े हैं, उस गांव में भी हो आया हूं। उस घटना से संबंधित अनेक वर्जन्स भी मैंने सुने हैं। उसी का आधार लेकर इस फिल्म की रचना करनी है मुझे। परंतु इस समय तो सब कुछ धुंधला है, अस्पष्ट है मेरे सम्मुख। आपको ही वह ठीक–ठीक करना है।

अमिताभ : परंतु इस फिल्म की मेन थीम 'खैरलांजी' में हुई हत्या के साथ है ना?

आनंद भुस्कुटे : 'खैरलांजी' में जो कुछ घटित हुआ, केवल उतना ही बताया जाए ऐसा मुझे नहीं लगता। यह कोई डाक्यूमेंटरी नहीं है। प्रियंका भोतभांगे इस फिल्म की नायिका होगी। एक ऐसी लड़की जो बुद्धिमान है, तेज है, पढ़कर उसे कुछ बनना है। मिलिटरी में जाना है। जो एक ओर निरंतर यह कह रही है कि बाबासाहेब के बाद आम्बेडकर का आंदोलन सच्चे अर्थों में आंदोलन रहा ही नहीं। वह निरंतर अपनी बेचैनी व्यक्त कर रही थी, इस समय के दलित नेतृत्व के प्रति। तो ऐसी लड़की का 'खैरलांजी' में दुर्भाग्य से अंत हो जाता है। प्रेक्षकों को कहीं तो ऐसा लगना चाहिए कि, अरे, जो भव्य–दिव्य सपने वह देख रही थी, समाज के लिए कुछ करना चाह रही थी, अपने आदर्शों के लिए अपनी पूरी जिंदगी वह लगा देना चाहती है उसका अंत इस प्रकार हो कितना हृदयविदारक है। थिएटर में से बाहर निकलते समय प्रेक्षक इस एहसास से सुन्न हो जाए कि इस प्रकार का दुर्भाग्यपूर्ण अंत तो अनेक का होता है, परंतु प्रियंका का अंत इस समाज में जो कुछ भी विशेष या सकारात्मक हो सकता था, उसे ही समाप्त कर देनेवाला अंत है। एक डेड एंड।

वैशाली : मैं ठीक से समझ नहीं पाई। आपको इस फिल्म में ऐसा बतलाना है कि प्रियंका 'खैरलांजी' में रहते हुए, वहां की जिंदगी जीते हुए, 16–17वें वर्ष में ही आम्बेडकर आंदोलन के यश–अपयश की मीमांसा कर सकती हैं? मुझे यह थोड़ा–सा अनरिॲलिस्टिक लगता है।

अमिताभ : पहले आप अपना फ्रेमवर्क बतलाइए पूरा। उसके बाद ही इस संबंध में विस्तार से बातचीत हो सकती है।

आनंद भुस्कुटे : पहली यह रिएक्शन आई कि सुरेखा भोतभांगे–अर्थात् प्रियंका की मां गांव में वेश्या–व्यवसाय करती थी। उसी प्रॉब्लेम से बाद का सब घटित हुआ। परंतु जब मैंने यह सुना तब मेरे मन में यह प्रश्न आया कि गांव ही सात–सौ, आठ–सौ घरों का। और फिर काफी दूर... फिर वहां वेश्या–व्यवसाय चलेगा भी तो कैसे? कुछ भी हो, परंतु उसकी परिणति इस प्रकार के हत्याकांड में हुई।

वैशाली : *(संतप्त होकर)* झूठ.... साफ झूठ है यह। कुछ भी बोल रहे हैं आप। इस हत्याकांड को दबा देने के उद्देश्य से बोला और लिखा गया है।

आनंद भुस्कुटे : हां,... उस संबंध में तो मैंने काफी सुन रखा है। एनी वे, 'खैरलांजी' में प्रत्यक्ष घटित घटना तो मैं स्क्रीन पर बतला भी नहीं सकता। कोर्ट में ही है सारा मामला अभी। सेंसर में ही यह फिल्म अटकी रहे और बिना किसी मतलब के उसी दृश्य के कारण वह हिट हो या हिट किया जाए–ऐसा मुझे नहीं लगता।

वैशाली : आपको 'खैरलांजी' पर फिल्म बनानी है ना! फिर वह घटना छोड़कर और क्या बतलाना चाहते हैं आप?

अमिताभ : वैशू, पहले उन्हें सब कुछ बतला तो देने दो ना! ठीक से। उनके दिमाग में है क्या इस संबंध में। बाद में चर्चा करेंगे ना हम!

आनंद भुस्कुटे : मैं फिर से दोहरा रहा हूं–मुझे डाक्यूमेंटरी नहीं बनानी है। आम्बेडकर का संदेश अधिकाधिक लोगों तक मुझे ले जाना है। फिल्म एक ऐसा माध्यम है कि, उसमें जैसा घटित हुआ, वैसा बतलाया जाए–यह मेरे लिए बंधन नहीं है। 'खैरलांजी' का संदर्भ वैसा ही रखकर सिनेमॅटिक स्वतंत्रता ले सकता हूं मैं। क्यों अमित जी? ठीक है ना?

अमिताभ : यह सब तो ठीक है। अंततः कोई भी रचना स्वतंत्र ही होती है।

आनंद भुस्कुटे : अब कैसे सही कहा आपने। यू हॅव हिट द नेल ऑन इट्स हेड! अब मैं आगे की बताता

हूं। कथानक कैसे आगे ले जाएं यह। प्रियंका के जीवन में एक प्रेम आता है। अत्यंत उत्कट। उसी के कॉलेज का युवक। उसी के गांव का। वह भी उसे प्रतिसाद देती है। परंतु धीरे–धीरे वह इस निर्णय पर पहुंचते है कि वह क्या कर रही है। प्रेम फिर शादी, फिर बच्चे–कच्चे, गृहस्थी, यह सब कुछ करना है क्या उसे? फिर अपने सपनों का क्या? अपने आदर्श का क्या? इस कारण अंततः वह अपने प्रेम को कन्विंस करती है कि अच्छा है तू। मैं चाहती भी हूं तुझे। ठीक से रह भी लेंगे हम। परंतु मुझे औरों की तरह जीना नहीं है। बाबासाहेब का सपना पूरा करना है मुझे। बहुत दूर की मंजिल हासिल करनी है मुझे। मेरे साथ घसीटते हुए क्यों आते हो? मैं मुक्त करती हूं तुम्हें अपने इस प्रेम से। और अंततः वह भी इसे स्वीकारता है।

वैशाली : परंतु यह सब किसलिए बतलाना है? इसकी जरूरत ही क्या है? ऐसा सचमुच घटित हुआ है क्या प्रियंका के जीवन में?

अमिताभ : वैशु,...

वैशाली : ठीक है जी, चुप बैठती हूं मैं। परंतु मुझे यह सब ठीक नहीं लगता। एक प्रश्न पूछूं मैं आपसे आनंद जी? सॉरी, मुझसे रहा नहीं जा रहा है, इसलिए पूछती हूं। तो फिर आप 'खैरलांजी' पर किसलिए फिल्म बनाना चाहते हैं? किसी भी शहर के आम्बेडकर आंदोलन की कार्यकर्ता पर आप फिल्म बना सकते हैं और उसके जीवन पर बना सकते हैं आप फिल्म। फिर वहां ऐसा वह उत्कट प्रेम, भव्य–दिव्य सपने। उन सपनों के लिए प्रेम का किया गया समर्पण आदि आदि।

अमिताभ : वैशु, उन्हें क्या करना है यह तो पूरा सुन लेंगे उनसे। पूरा सुनना नहीं है क्या तुझे?

वैशाली : चलने दीजिए चर्चा। मुझे कुछ प्रोजेक्ट्स जांचने हैं छात्रों के। और मार्कलिस्ट भी देनी है कल। भूल ही गई थी मैं। अपनी इस बातचीत में।
(उठकर जाती है।)

अमिताभ : आप वैशाली की बातें मन पर नहीं लीजिए, आनंद जी। वह झट् से रिएक्ट करती है।

आनंद भुस्कुटे : *(जेब से रूमाल निकालकर माथे पर आए पसीने की बूंदों का पोंछता है।)* ठीक है, उनकी स्पष्टता शोभनीय है उनके लिए। प्राध्यापिका ही है ना, वह।

अमिताभ : हां, अब बताइए, आगे का।

आनंद भुस्कुटे : एक सरकारी रिपोर्ट में मैंने ऐसा पढ़ा है, मतलब बहुत स्पष्ट रूप से वहां दर्ज है, उस रिपोर्ट में कि 'खैरलांजी' में कई वर्षों पूर्व ऐसा ही कुछ घटित हुआ था। एक आदमी उस गांव से अचानक फरार हो गया था। खैरमोडे उसका नाम था। इस घटना का अचूक उपयोग हम फिल्म में कर सकते हैं।

अमिताभ : मतलब कैसे?

आनंद भुस्कुटे : मुझे ऐसा कहना है कि, वह आदमी जो गांव से फरार हो चुका था, उसको शायद खत्म कर दिया गया था। रिपोर्ट में फरार हो गया का उल्लेख है मार डालने का नहीं। अर्थात् वह दलित है। मतलब दलितों को मार डालने का, गायब करने का और यह सब दबा डालने का पूर्व इतिहास इस गांव का है। 'खैरलांजी' हत्याकांड क्यों हो सका, उसकी लिंक इस प्रकार भी जोड़ी जा सकती है।
(उसी समय वैशाली मोबाईल पर बोलते–बोलते बाहर आती है। कुछ–कुछ टेन्स में। आंखें भर आई हैं। वे दोनों एकदम खामोश हो जाते हैं।)

वैशाली : *(मोबाइल पर)* परंतु सर, यह कैसे संभव है? मैं तो ऐसा कुछ भी लिखकर दे नहीं सकती।. .. ऐसा किया ही क्या है मैंने? हां... हां... समझती हूं मैं... परंतु... आप जिसे गलत आचरण कह रहे हैं वह किस आधार पर तय करने जा रही है मैनेजमेंट।...ठीक है... आप कह रहे हैं तो मैं कल ही आपसे मिलूंगी। ...हां... हां... नहीं... नहीं, मैं किसी से कुछ नहीं कहूंगी। रखती हूं मैं अब...

(वैशाली हाथ का मोबाइल सोफे पर फेंकती है। और झट् से कुर्सी पर बैठती है।)

अमिताभ : क्यों? क्या हुआ? एनी प्राब्लेम! कुछ सीरियस है क्या? कहो ना तुरंत।

आनंद भुस्कुटे : मुझे लगता है कि अब मुझे निकलना चाहिए। अपनी बैठकें होती ही रहेंगी। परंतु आपने इस प्रोजेक्ट को स्वीकारा है, ऐसा समझूं ना मैं?

अमिताभ : मैं आपसे बाद में फोन पर बात करता हूं।

आनंद भुस्कुटे : ठीक है।

(भुस्कुटे तेजी से निकल जाते हैं।)

अमिताभ : हुआ क्या है? कुछ कहोगी कि नहीं? शांत हो जा यह ले।

(सामने के टेबल पर स्थित पानी का गिलास उसके हाथ में देता है।)

वैशाली : बेशरम् कहीं के। माफी मांगने के लिए कहते हैं। नहीं तो नौकरी से निकाल देने की धमकी दे रहे हैं।

अमिताभ : माफी? धमकी? क्या हुआ, क्या है? कौन क्या कर रहा है? थोड़ा सा शांत हो जा और ठीक से बतला मुझे।

वैशाली : तुझे थोड़ी देर पहले कहा था ना मैंने कि उस प्रसाद सहस्त्रबुद्धे जी के भाषण के बाद क्या कहा था मैंने। उसी का इश्यू बनाया है मैनेजमेंट ने। यह केवल बहाना है रे!.... उनका मूल गुस्सा है 'खैरलांजी' के बाद मंत्रालय के आंदोलन में मेरी सहभागिता पर। तब से अप्रत्यक्षतः प्राचार्य मुझे सूझा रहे थे, यह गलत ही हुआ! पूरा करिअर दांव पर लगा दिया है आपने इसके लिए? मैडम, आपके घर पर आप अकेली कामकाजी, कितनी कठिन जिम्मेदारी है आप पर। मुझे चिंता लगती है आपकी। तुझे कहूं अमु, ऐसा गुस्सा आया था, मुझे उस पर। पर मैंने तुझे इस बारे में कुछ भी नहीं कहा था। तू अपसेट हो जाता इसलिए! परंतु यह सब इस स्तर पर जाएगा, ऐसा लगा नहीं था, मुझे!

अमिताभ : पर वे ऐसा कैसा कर सकते हैं, ऐसे फालतू कारणों पर।

वैशाली : वह सहस्त्रबुद्धे है ना! कल जिसने व्याख्यान दिया, वह बापट साहब का सगा मौसेरा भाई है। हाफ चड्डीवाला, दोनों भी। मेरी सबेरे की बहस उसे काफी तकलीफ दे गई है। पूरे स्टाफ के सम्मुख, छात्रों के सम्मुख कहा ना मैंने उन्हें। अब कह रहे हैं, माफी मांगो.... नहीं तो.... 'खैरलांजी' के निर्देशन में जिन–जिन लोगों ने हिस्सा लिया था, उन सबको भयंकर तकलीफ दी जा रही है अब। झूठे केस में फंसा दिया गया है अनेक को। हमारे जैसे नौकरी पेशेवालों को तो छला ही जा रहा है। किसी को भी भयभीत करा देना उसके लिए आसान होता है रे। नौकरी से बाहर निकालने की धमकी वे दे सकते हैं।

अमिताभ : पर हम इसे रोक सकते हैं। प्रेस में जाएंगे हम।

वैशाली : वह सब तो करेंगे ही। आसानी से हार माननेवाली औरत नहीं हूं मैं।

अमिताभ : परंतु यह देख वैशु, इसमें से सबसे आसान तरीका यह है कि वे छात्रों को तेरे खिलाफ भड़काएंगे। तेरे खिलाफ लिखित शिकायतें इकठ्ठा करने की मुहिम वे शुरू करेंगे।

वैशाली : नहीं, वैसा नहीं होगा। मेरा विश्वास है मेरे छात्रों पर। इतिहास पढ़ाती हूं मैं, दंतकथाएं नहीं। यथार्थ को ही रखा है मैंने उनके सम्मुख। अमु, मैंने तो अच्छा ही बोया है छात्रों में। वह बेकार नहीं जाएगा। देखती हूं, प्राचार्य ने कल बुलाया है मिलने के लिए। देखें, क्या होता है?

(अंधेरा)

दृश्य–दो

(प्राचार्य डॉ. सुहास किर्लोस्कर की केबीन)

प्राचार्य किर्लोस्कर : मैं क्या कह रहा हूं मैडम, एक छोटा अफसोस भरा, खेद व्यक्त करनेवाला लेटर आप मैनेजमेंट को दे दें और समस्या खत्म कर दें। सुनिए, आपके प्रति मुझमें अत्यधिक कन्सर्न है। रिसपेक्ट

है मेरे मन में आपके काम के प्रति। परंतु हम सब एक सिस्टम में काम कर रहे हैं। उसके कुछ कंपल्शन्स होते हैं। उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

वैशाली : मैंने कहीं पर कोई गलत आचरण किया है–ऐसा मुझे लगता ही नहीं। कल सहस्त्रबुद्धे जी के व्याख्यान के बाद खुली बहस का आह्वान उन्होंने ही किया था ना। इस कारण मैंने अपने मुद्दे रखें, तो उस पर इतना गहजब किसलिए?

प्राचार्य किर्लोस्कर : मैं मानता हूं आपकी सारी बातें। पर आप भी यह समझ लीजिए आप कोई अधिकृत माफीपत्र नहीं दे रही हैं कि जो रिकॉर्ड पर लगनेवाला है। यह केवल चेयरमैन साहब के समाधान के लिए है। आपने पत्र दिया है, यह खबर तक किसी को नहीं लगेगी।

वैशाली : तो फिर वे मुझे स्पष्ट रुप से कहें कि पत्र दो। प्राचार्य के रूप में आप पर यह जिम्मेदारी क्यों डाल दी गई है? मतलब अधिकृत चैनल्स का उपयोग अनाअधिकृत बातों के लिए करना ठीक है क्या? कॉलेज में अगर घटित घटना के संबंध में कुछ लिखित स्पष्टीकरण मुझसे मांगा गया है तो मैं उसका उत्तर निश्चित रूप से दूंगी ही।

प्राचार्य किर्लोस्कर : मैडम, आप बिना किसी मतलब के हमे क्यों खींच रही हैं? इतनी सीधी–सादी बात, आप इसे प्रतिष्ठा का मुद्दा मत बनाइए।

वैशाली : सर, इसे छोटी–सी, सीधी–सी बात कहकर छोड़ नहीं सकते। और प्रतिष्ठा का कहां प्रश्न? मूल रूप से हम शिक्षा क्षेत्र के लोग हैं। विचार की स्वतंत्रता को, व्यक्ति की स्वतंत्रता को उठाए रखना, अपने आसपास जो चल रहा है उसकी समीक्षा करना, और इसी को छात्रों के सम्मुख रखना यही अपना काम है ना।

प्राचार्य किर्लोस्कर : मैडम, आप बिना कारण अपना और मेरा भी समय जाया कर रही हैं। सामान्य–सी बात है यह।

वैशाली : मुझे नहीं लगता वैसा।

प्राचार्य किर्लोस्कर : ठीक है। मैं यह नहीं कहता कि आज ही आप अपना निर्णय दें। अभी एक दो दिन विचार कीजिए। भावना के आधार पर कोई गलत निर्णय मत लीजिए–इतना ही मैं कह सकता हूं। मैनेजमेंट को मैं तुरंत कुछ भी सूचित नहीं करूंगा। पिछले 17–18 वर्षों से आप इस कॉलेज में काम कर रही हैं। बड़ी बात है यह आपके लिए और कॉलेज के लिए भी। मुझे चिंता है आपकी। आप चाहती हों तो साहब को जो पत्र चाहिए वह मैं लिखकर देता हूं, आप केवल हस्ताक्षर कीजिए। परंतु एक बात ध्यान में रखिएगा कि एक सीमा तक मैं आपके साथ हूं। उसके बाद नहीं। अंततः मैं भी नौकर हूं ना! आइए आप...

वैशाली : थैंक्स सर, आती हूं मैं...

दृश्य–तीन

(ड्राइंगरुम, दोहपहर का समय। अमिताभ कम्प्यूटर पर कुछ काम कर रहा है। वैशाली सोफे पर रिमोट से कुछ हरकत करते हुए आलस्य से लेटी हुई है। सामने टीवी शुरू है। परंतु उसे वह देख नहीं रही है। अमिताभ पानी का गिलास लेने पीछे मुड़ता है। वैशु की ओर नजर जाती है।)

अमिताभ : क्या चल रहा है वैशु? क्यों बेचैन हो? क्या हुआ आज कॉलेज में? जबसे आई हो एक शब्द भी नहीं बोल रही हो।

वैशाली : नहीं रे, पता नहीं क्यों? बेचैनी महसूस हो रही है। मां की याद आ रही है।

अमिताभ : *(उसके पास जाता है)* वैशु हुआ क्या? प्राचार्य ने क्या कहा?

वैशाली : कहा कि अब इस प्रकरण को बढ़ाओ नहीं। एक सादा पत्र लिखकर दो, स्पष्टीकरण वाला, बस्स! अमू, मुझे आश्चर्य होता है कि, परसों के सहस्त्रबुद्धे जी के भाषण के मुद्दों को मैं काटती क्या हूं कि तुरंत मैनेजमेंट मेरे लिए माफी मांगो का फतवा जारी करती है.... इन्हें कुछ भी कैसे नहीं लगता?

अमिताभ : तूने क्या तय किया है?

वैशाली : कतई पत्र नहीं दूंगी मैं माफी का। फिर जो भी होगा हो जाए। पर तू है ना मेरे साथ?

अमिताभ : पागल हो क्या तुम? मुझे विश्वास था कि तू ऐसा ही निर्णय लेगी।

वैशाली : फिर हम दोनों का आगे क्या?

अमिताभ : फिर तुम्हारा वही। क्या वे तुझे नौकरी से निकाल सकेंगे? थोड़ी सी तकलीफ देंगे बस। ध्यान रखेंगे तेरे प्रत्येक एक्टिविटिज पर। फाइल तैयार करेंगे तेरे खिलाफ।

वैशाली : अरे हां! आज भाग्यश्री कुलकर्णी बता रही थी कि मंत्रालय के निदर्शन की रात मैं कस्टडी में थी, उसके सारे रिकार्ड लाने के लिए कहा है प्राचार्य ने ऑफिस के बागडे को। क्या करनेवाले होंगे रे?

अमिताभ : तुझे ब्लैकमेल करने हेतु उपयोग करेंगे वे। बहुत कुछ नहीं कर सकते वे। इन बातों के आधार पर अतिवादी एक्शन अगर उन्होंने ली तो फिर अनेक मुश्किल प्रश्नों से जूझना होगा उन्हें। हमें और हमारे आंदोलन को ठीक से जानते हैं वे। अरे हां, तुझे कहना ही भूल गया कि सबेरे आनंद जी का फोन आया था। तेरे संबंध में पूछ रहे थे, तेरी प्रशंसा कर रहे थे।

वैशाली : मेरी? किस कारण?

अमिताभ : अच्छी तेज पत्नी मिली है आपको, ऐसा कह रहे थे।

वैशाली : मुझे तो कतई पसंद नहीं आया उनका फ्रेमवर्क। तुझे इसका पता होना चाहिए कि उन्होंने पहले ही सब कुछ तय कर लिया है, फिल्म की स्क्रिप्ट कैसी होनी चाहिए सब। भले ही लिखा गया न हो तो भी उनके दिमाग में वह पहले–से ही लिखा गया है। तुझे केवल ओथेंटिसीटी लाना है संवादों में। कहा है ना उन्होंने एक बार ऐसा।

अमिताभ : पर उन्हें ऐसा लगता है क्या कि वे जैसा कहेंगे वैसा लिखूंगा मैं। इतना बुद्धू समझते हैं क्या वे मुझे?

वैशाली : नहीं, मुझे नहीं लगता ऐसा। ठीक से पहचानते हैं वे तुझे। आंबेडकर अनुयायियों द्वारा शुरू किए गए आंदोलनों पर तू निरंतर टूट पड़ता है, उसका उपयोग वे करना चाहते हैं। व्यवस्थित रूप में। उन्हें ऐसा लगता है कि तुझे अपनी ही वैचारिक भूमिका यहां प्रस्तुत करना संभव हो सकेगा प्रियंका के कैरेक्टर के माध्यम से। यह तुझे पसंद भी आएगा इसलिए वे समझ रहे हैं कि तू यह सब करेगा।

अमिताभ : एक दृष्टि से यह ठीक भी है ना! मेरी भूमिका तो वह है ही। सभी ओर कहते रहता हूं मैं। फिर अगर मैंने यहां प्रस्तुत किया तो क्या प्रॉब्लेम है?

वैशाली : प्रॉब्लेम तो यहीं पर है। आंदोलन के भीतर रहकर एक आंबेडकरवादी लेखक आंदोलन की गति के अंतरविरोधों को तीव्रता के साथ प्रस्तुत करता है–यह एक बात है और उस टीका का उपयोग किसी दिग्दर्शक द्वारा उसकी अपनी सांस्कृतिक राजनीति हेतु करना यह तो एकदम भिन्न बात है। देख ना तू। रावण पर उसकी 'महानायक' फिल्म हम दोनों ने देखी है। रावण को महानायक कहते हुए उस पर फिल्म करना वास्तव में परंपरा से कटनेवाली थीम! प्रगतिशीलता की मुहर अपने आप लग जाती है इस विषय के कारण। पूरे का पूरा उल्टा कर बतलाने का दम भरा गया यहां। परंतु मेन थीम के अंतःस्तर पर, निरंतर प्रज्ज्वलित होनेवाला प्रवाह बहता रखा उन्होंने। राम की चमकदार शुभ्रता का। 'खैरलांजी' पर फिल्म करने का केवल बहाना है रे अमू। वास्तव में उन्हें आम्बेडकर के अनुयायियों के आंदोलन की विफलता को प्रस्तुत करना है। मतलब दलित समाज की अक्षमता को, कमजोरी को कहना है उन्हें।

अमिताभ : हां, और अब मेरे ध्यान में आ रहा है कि, वे पुन्हा–पुन्हा प्रेम अनैतिकता पर क्यों बल दे रहे थे? आज उन्होंने उस खैरमोडे से संबंधित 50–60 वर्ष पहले का एक प्रसंग कहा कि उसकी हत्या होती है, ऐसा बतलाया कि उसका संबंध गांव की मुखिया की पत्नी से था। मुखिया ही मरवाता है खैरमोडे को। उन्हें यही बतलाना है कि खैरलांजी का सारा प्रकरण एक

अनैतिक संबंध की परिणति है। परंतु ऐसा सीधे तो कहा नहीं जा सकता। बतलाया भी नहीं जा सकता। फिर किसी का काल्पनिक अंतरजातीय प्रेम, प्रेम की विफलता, अथवा 'खैरलांजी' में इसके पूर्व के किसी के अनैतिक संबंध को बतलाकर, उसकी परिणति के रूप में हत्याकांड हो गया, कि थिएटर के बाहर निकलनेवाले प्रेक्षकों के मन में अनैतिकता और हत्याकांड की लिंक रह जाती है और यहीं वे सफल हो जाते हैं 'खैरलांजी' का मूल आशय खत्म कर देने में। इस पर कहर यह कि मुझे आम्बेडकर का मेसेज ज्यादा लोगों तक ले पहुंचाना है। इस आशय का एक वाक्य फेंक दें और उन्हें लगता है कि हम उनके जाल में फंस जाएंगे।

वैशाली : अरे, इन्होंने निरंतर यही तो किया है। अब यही देख न! खैरलांजी में जो घटित हुआ उसे जैसे का तैसा अगर वे प्रस्तुत करते तो भी वह आज की व्यवस्था के संदर्भ में एक भेदक भाष्य हो सकता है। परंतु बिना किसी मतलब के प्रेम वगैरह लाकर, अनैतिकता लाकर, हिंसा, क्रूरता का मुद्दा ही आऊट फोकस करना है। सभी प्रश्नों का सामान्यीकरण, सतहीकरण कर उसकी तेजस्विता को ही भोथरी कर देनी है उन्हें। अरे, बुद्ध को विष्णु का नौंवा अवतार कहने की, तुकाराम को सदेह बैकुंठ भिजवा देने की और बाबासाहेब को हेगडेवार के निकट लाकर बिठा देने की परंपरा है इनकी। इसके सिवा इनकी राजनीति आगे कैसे बढ़ेगी?

अमिताभ : फिर सीधे उन्हें नकार दूं? मुझे भी इस फिल्म को स्वीकारने में कोई तथ्य नजर नहीं आता।

वैशाली : और यह कितना गंभीर है कि संवाद और पटकथा लेखक के रूप में अधिकृत रूप से तेरा नाम रहेगा वहां। मतलब उन्हें बंदूक तो चलानी है, परंतु तेरे कंधे पर रखकर।

अमिताभ : तुरंत फोन करता हूं मैं उन्हें कि मुझे आपका यह फ्रेमवर्क मान्य नहीं है।

वैशाली : अरे, रुक जरा। ऐसी जल्दबाजी मत कर। तू ही एक फ्रेमवक्र क्यों नहीं तैयार करता। हम दोनों उसे उनके सम्मुख रखेंगे। हमारे पास तो 'खैरलांजी' से संबंधित सभी रपटें हैं। जरूरत होगी 'खैरलांजी' फिर से एक बार हो आएंगे। पिछली बार सिद्धार्थ गजभिये से भेंट हुई ही नहीं थी। इस बार विस्तार से उसके साथ बातचीत भी हो जाएगी। कैसे लगता है तुझे?

अमिताभ : अच्छी आइडिया है तेरी।

वैशाली : तू आनंद जी को फोन करके कह दे कि मैं काम शुरू कर रहा हूं। मुझे जरा समय दीजिए। परंतु क्या उन्होंने सारा प्लॉट कह दिया है तुझे। अंत तक का भी?

अमिताभ : शेष रहे दो–तीन मुद्दे भेज देता हूं आपके पास ऐसा कहा है उन्होंने। फिल्म का अंतिम दृ श्य क्लियर नहीं है अब तक। आपके लेखन में से ही वह इव्हॉल्व होते जाएगा ऐसा सुझाया है उन्होंने।

वैशाली : अरे, फिर तो बहुत ही अच्छा! तेरे लेखन में से क्या–क्या इन्वॉल्व होता जाएगा, यही बताएंगे अब हम उन्हें। परंतु तू क्या देनेवाला है इसमें?

अमिताभ : बाबासाहेब ने देहातों को डबरों की उपमा दी थी। यह परिभाषा कालबाह्य हो गई है ऐसा कई बार कईयों ने कहा है। परंतु देहातों की यथार्थ स्थिति क्या है इसे 'खैरलांजी' ने सामने लाया है। बाबासाहेब के रास्ते पर चलने के बाद भी तुम्हारा भविष्य प्रकाशमान क्यों नहीं, उसके कारक आज भी समाज व्यवस्था में किस प्रकार हैं–यह खोजने का प्रयत्न यह फिल्म करेगी। एक और बात उत्सव रूप का हत्याकांड यह संभवतः आज के युग का गुणविशेष बन गया है। 92–93 में मुंबई में अथवा उसके बाद गुजरात में मुस्लिमों का कत्लेआम हो अथवा देश भर में घटित दलित अत्याचार की घटनाएं। फिर वह हरियाणा के झज्जड़ का हत्याकांड हो अथवा महाराष्ट्र के भूतेगाव, सोनेखोटा गांव की घटनाएं हों। अब तक किसी सवर्ण जाति का जमींदार, उसके द्वारा पाले–पोसे गुंडे, रिश्तेदार अत्याचार करते थे। गांव के शेष लोग खामोश रहते अर्थात् उनके दहशत के कारण। अब प्रत्यक्ष अत्याचार में पूरा गांव सहभागी हुआ है, ऐसा अपवाद रूप में ही होता। अब अलबत्ता मानो यह नियम ही

बन गया है। वैश्वीकरण के कारण ओबीसी जातियों का दलित विरोध कैसे आकार लेते जा रहा है, यह मुझे इसमें बतलाना है। खैरलांजी के उदाहरण से।

वैशाली : परंतु सिनेमा के फॉर्म में और वह भी प्रियंका को केंद्रीय स्थान पर रखकर ही करना होगा ना यह सब।

अमिताभ : हां। 'खैरलांजी' का अमानवीकरण कैसे हुआ, यह प्रियंका की दृष्टि से, उसके अनुभव से, सीधी–सादी घटनाओं से कहा जा सकता है। कुल मिलाकर यह फिल्म प्रियंका द्वारा लड़ी गई लड़ाई पर ही होगी।

वैशाली : परंतु ठीक–ठीक कैसे बढ़ेगी यह थीम?

अमिताभ : प्रियंका का आठवें वर्ष से अठारह वर्ष तक की जीवनयात्रा, उसके जीवन की मेजर घटनाएं हम बताएंगे। बचपन से प्रियंका अपना परिवार और विरुद्ध गांव ऐसे विषम झगड़े को देख रही थी। कदम–कदम पर अपने परिवार की होनेवाली अवहेलना, तिरस्कार, कुचलना उसने देखा था। बावजूद इसके वह फूलनदेवी अथवा नक्सलवादी होने का स्वप्न नहीं देखती। अध्ययन कर परीक्षा में उच्चश्रेणी में उत्तीर्ण होना, एनसीसी में शरीक हो, मिलिटरी में जाने का स्वप्न वह देखती है, यह बाबासाहेब और बुद्ध की शिक्षा की परिणति नहीं है क्या?

वैशाली : वा! बहुत अच्छी स्क्रिप्ट हो जाएगी यह तो। इस स्क्रिप्ट को नकारना आनंद जी के लिए नागवर गुजरेगा।

अमिताभ : देखेंगे।
(अंधेरा)

दृश्य–चौथा

(कॅफे कॉफी डे, दो–चार छात्र बैठे हुए। एक कोने में वैशाली और आकाश देशपांडे (वैशाली का जुनियर कलिग) बैठे हुए हैं। वैशाली अतिशय उद्विग्नावस्था में)

आकाश देशपांडे : मैडम, प्लीज आप खुद को संभालिए। आप ही इस प्रकार अगर लड़खड़ाती रहीं, तो फिर कैसे होगा? यही तो चाहते हैं वे। हम दोनों प्राचार्य से बात करेंगे। क्या चल रहा है यह?

वैशाली : आकाश, अरे बाबा, यह ऐसे ही चलता आ रहा है। कितना समय बीत गया। कहते हैं हम सब कि बदल रहा है बहुत कुछ। परंतु नहीं रे। मैं तो आज सबेरे से निराश हो गई हूं। बड़ी मुश्किल से लेक्चर्स लिए मैंने। और तुझे कह दूं, छात्र मेरी ओर इतनी विचित्र नजरों से देख रहे थे कि मुझे उनके सम्मुख खड़े रहना भी मुश्किल हो गया था। देख भला, औरत की जिंदगी उजाड़ देना कितना आसान होता है, इस व्यवस्था में। केवल उसके चरित्र पर कलंक लगाना, बस।

आकाश देशपांडे : परंतु यह किया किसने होगा?

वैशाली : आकाश, तुझे तो सब कुछ पता है। पिछले कुछ दिनों से मेरे खिलाफ कॉलेज में किस प्रकार का वातावरण बनाया गया है। मेरा तो पक्का विश्वास है कि खुद बापट जी ही इसके सूत्रधार हैं। खैरलांजी के बाद पूरे राज्यभर में जो क्षोभ उठा, उसमें डेक्कन क्वीन में रेल का डिब्बा जलाए जाने के बाद की मेरी प्रतिक्रिया 'लोकवार्ता' में छपी थी। 'स्वतंत्र भारत में सार्वजनिक रूप से अपने क्षोभ का इतनी सुसंस्कृत पद्धति से किए गए निषेध का दूसरा कोई उदाहरण नही है।' इस प्रतिक्रिया को पढ़कर बापट बहुत नाराज हो गए थे–ऐसा मुझे प्राचार्य ने तभी कहा था। इस बापट का ही देखो ना, इसकी पार्टी राष्ट्रवादी परंतु मानसिकता संघ की।

आकाश देशपांडे : परंतु मैडम, आपने सार्वजनिक संपत्ति के नुकसान का समर्थन किया है। मुझे भी उचित नहीं लगी थी आपकी प्रतिक्रिया। और कॉलेज में तो किसी को भी यह प्रतिक्रिया अच्छी नहीं लगी। स्टाफ रुम में भी उस दिन चर्चा शुरू हुई थी। वे लेले सर बोले भी कि क्या आकाश, तेरे एचओडी ने तो हिंसा के समर्थन में प्रतिक्रिया दी है। कक्षा में कौन–से पाठ पढ़ाती होगी

रे, ये मैडम?

वैशाली : उस लेले का मुझे कुछ बता मत। संघ का ही आदमी है वह। पर आकाश, मुझे एक बता, सार्वजनिक से क्या तात्पर्य होता है?

आकाश देशपांडे : जो सबका है वह सार्वजनिक। डेक्कन क्वीन किसी की व्यक्तिगत संपत्ति है क्या?

वैशाली : डेक्कन क्वीन का एक डिब्बा जलाने के बाद प्रसार माध्यमों के विलाप का सुर अगर देखें तो यह प्रश्न मन में उठता है कि वह सार्वजनिक थी या व्यक्तिगत?

आकाश देशपांडे : मतलब?

वैशाली : उल्हास नगर से रोज सैकड़ों गाड़ियां जाती हैं। केवल डेक्कन क्वीन का ही नुकसान क्यों किया गया? क्योंकि उसका एक स्पष्ट ब्राह्मणी चेहरा है। अहंकार से पोषित। एक बात और व्यक्तिगत मिल्कियत की जमीन को गांव ने जबरदस्ती से सार्वजनिक बताने का निर्णय लिया हो तो? जब गुजरात में वली दकनी की कब्र ध्वस्त कर दी गई, तब क्यों नही बोले ये लोग, सार्वजनिक जगहों पर होते जा रहे सांस्कृतिक विरासत के नाश के बारे में।

आकाश देशपांडे : परंतु उन्होंने बुरा आचरण किया इसलिए हम भी प्रत्युत्तर में वैसा ही उत्तर दें–यह ठीक है क्या? और नुकसान तो...

वैशाली : नुकसान? विधवा, गर्भवती स्त्रियां, विकलांग, कमजोर आदि को जलाने का सांस्कृतिक घमंड लेले जैसो की ओर से प्रदर्शित किया जा रहा हो और उसी समय डेक्कन के संबंध में कुछ अलग घटित हुआ। डिब्बे में से प्रत्येक को नीचे उतारकर, किसी को भी कोई तकलीफ न हो इसका विश्वास होने के बाद ही डिब्बे को आग लगाई गई। इसमें से होनेवाले नुकसान की कोई अलग श्रेणी लगाएंगे कि नहीं?

आकाश देशपांडे : अच्छा वह रहने दीजिए। इस पर चर्चा होती ही रहेगी। अबकी बार का महत्वपूर्ण मुद्दा व्याख्यान का है। तीन दिन पहले के। मैडम उस दिन आपको कुछ बोलने की जरूरत थी क्या? सहस्त्रबुद्धे जी को नाराज करने का अर्थ बापट साहब को नाराज करना था ना?

वैशाली : क्या बोल रहे हो आकाश?

आकाश देशपांडे : अजी मैडम! हमें सिर्फ अपनी नौकरी को महत्व देना है। आपकी यह जो आदत है ना! सभी ओर सही–सही बोलना, विवेकसम्मत भूमिका लेना, इससे तो इतने प्रश्न पैदा हो गए हैं। और मेरा क्या? मेरी तो शादी तय हो गई है। आपके और मेरे बारे में यह जो कॉलेज में शुरू है, वह पहुंचेगा ही बर्वे तक। मेरा यह ससुर अत्यंत टिपिकल व्यक्ति है। मैं सीकेपी (चांद्र सेनीय कायस्थ प्रभू) हूं इसकी जानकारी मिलने के बाद वह मुझसे नाराज ही था। परंतु वैष्णवी की दृढ़ भूमिका के कारण उस मुद्दे को दूर रखने को वह तैयार हुआ। और अब यह ऐसा शुरू हुआ है। और वैष्णवी? उसे मैं क्या उत्तर दूं? यह विवाह शायद इसी कारण टूट भी सकेगा मेरा।

वैशाली : आकाश, थोड़ा सा शांत हो जा। इस पद्धति से अगर हम एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे, तो फिर कोई भी समस्या हल हो नहीं सकती। सुनो, अगर हम दोनों में ऐसा कुछ भी नहीं है, तो हम क्यों घबराएं?

आकाश देशपांडे : ऐसा कुछ भी नही है। फिर भी पोस्टर्स लग जाएंगे ना हमारे संबंध में, कॉलेज में। इसके आगे पता नहीं और क्या–क्या करनेवाले हैं ये लोग?

वैशाली : हम लोग इसमें से कुछ तो रास्ता निकालेंगे। ऐसा करेंगे, पुराणिक सर से बोलेंगे। वे एलएमसी की ओर से मैनेजमेंट से बोल सकेंगे, अपने बारे में। कुछ तो मार्ग सुझाएंगे वे हमें। चलो अब, खत्म करो वह कॉफी। कितनी ठंडी हो चुकी है।

आकाश देशपांडे : और आपकी कॉफी तो बर्फ ही हो गई है! *(दोनों भी हंसते हैं)*

वैशाली : सुनो, अगर तुम्हारी इच्छा, हो तो क्या मैं वैष्णवी से बातचीत करूं? उस तक यह सब कुछ ठीक–ठीक पहुंच गया ना, तो फिर कोई समस्या नहीं रहेगी। देखो आकाश, कॉलेज की इस राजनीति में तुझे अपना सर्वस्व लगाने की कोई जरूरत नहीं है। और वैष्णवी तक तो

तेरे–मेरे संबंध में ऐसा मेसेज जाना, मतलब तुम्हारे रिश्ते की नींव पर ही आघात किए जैसा है। आकाश, तेरी वैचारिक भूमिका कुछ भी हो, हम दोनों पिछले पांच–छह वर्षों से इकट्ठे काम करते रहे हैं। तुझे छात्रावस्था से मैं देखती आ रही हूं। अच्छा–सा डायलॉग है हम दोनों में। इतना ठीक चल रहा है हमारा यह डिपार्टमेंट। और इस कारण औरों के सिरदर्द का वह एक कारण भी बन गया है। तुझे क्या लगता है, यह आज ही पोस्टर्स लग गए हैं अपने संबंध में। अरे, कितनों ने व्यंग्य किया है अब तक मुझ पर तुझे लेकर।

आकाश देशपांडे : क्या कह रही हैं मैडम! आपने बताया नहीं मुझे इस संबंध में?

वैशाली : अरे, बिना किसी महत्व की हैं ये बातें! गॉसिप ही। वह करना अनेकों के लिए टाइमपास होता है, स्टाफ रूम में बैठे–बैठे। *(वेटर बिल लेकर आता है। वैशाली पर्स में से पैसे निकालकर देती है।)*

आकाश देशपांडे : मुझे ऐसा लगता है मैडम कि अब हमें डिपार्टमेंट के बाहर इकठ्ठे नहीं मिलना चाहिए। कैंटिन की रोज की चाय दोनों मिलकर लेते रहे हम अब तक। अब बंद कर देंगे वह भी।

वैशाली : अरे, पागल हो गया है क्या तू? अगर हम अब इस तरह जीने लगे तो फिर उनके आरोपों की पुष्टि ही हो जाएगी ना? वह कुछ नहीं। हम ॲज इट इज रहेंगे। चिंता मत कर सब कुछ ठीक हो जाएगा। आकाश, तेरा विश्वास है ना, मुझ पर?

आकाश देशपांडे : मैडम, आप पर मेरा विश्वास है ही। परंतु आगे क्या होनेवाला है, डर लगता है मुझे यह सोचकर। मेरी नौकरी का अगर कुछ ऐसा–वैसा हुआ ना, तो मर ही जाऊंगा मैं। मुझ पर तो पूरे घर की जिम्मेदारी है।

वैशाली : आकाश, इतना रेस्टलेस मत हो जा। घर की जिम्मेदारी तो मुझ पर भी है। तुझे तो सब कुछ मालूम है। खुद को इतना लोनली समझने की जरूरत नहीं है। अरे, आंदोलन में है हमारा घर। हम भी अपनी ओर से फिल्डिंग लगाएंगे ना! मैं छायाताई कांबले से बात करती हूं। समर्थन मिलेगा ही हमें। कुछ गलत नहीं किया है हमने, तू चिंता मत कर। चल निकलेंगे।

आकाश देशपांडे : ओके मैडम। थैंक्स! बहुत अच्छा लगा आपसे बातचीत करने पर।
(अनायास रूप से वह हाथ आगे करता है। और एक क्षण रुककर सकपकापा–सा, हाथ पीछे खींच लेता है। वह हंसती है। और फिर वह भी। वह उसकी पीठ पर हल्की–सी चपत मारती है। वे बाहर निकलते हैं।)
अंधेरा

दृश्य–पांचवां

स्थान : *(कॉलेज की कॉन्फ्रेंस रूम। राऊंड टेबल। एक ओर चेयरमैन बापट साहब, संस्था की सेक्रेटरी प्रमिला माली, प्राचार्य किर्लोस्कर बैठे हैं तो दूसरी ओर वैशाली)*

प्राचार्य किर्लोस्कर : गजभिये मैडम, आपको शायद मालूम होगा ही कि आज हमलोग यहां किसलिए इकट्ठे हुए हैं। मैनेजमेंट के निर्णयानुसार ही यह बैठक हो रही है। हमें लगता है कि पहले आप विस्तार से बोले। सच्चाई से बोले, ऐसे विषय पर खुलकर बोले, हम सब निश्चित ही वेल मैच्योर हैं।

वैशाली : मैं तो कुछ समझ नहीं पा रही हूं कि यह सब क्या चल रहा है? किस संबंध में बोल रहे हैं आप? कोई कॉलेज में पोस्टर्स क्या लगाता है और मुझे पूछताछ के लिए बुलाया जाता है।

प्रमिला माली : ऐसा है गजभिये बाई, यह बहुत गंभीर प्रश्न है। कॉलेज की प्रतिमा पर दरार पड़ सकती है ऐसे आचरण से।

वैशाली : मतलब? आप कहना क्या चाहती हैं? अगर कुछ स्पष्ट बोलेंगी तो ठीक रहेगा।

प्रमिला माली : मतलब अब हम ही स्पष्ट बोलें? अजी, पूरा कॉलेज बोल रहा है आप दोनों के बारे में। और आप ऐसे बतला रही हैं कि कहीं कुछ हुआ ही नहीं। पूरी तरह से नकार रही हैं आप?

वैशाली : तो फिर क्या घटित हुआ है? मुझे बताएंगी आप?

प्रमिला माली : सुनिए, ऐसा नाटक मत कीजिए। मैनेजमेंट के पास लिखित शिकायतें आई हैं आपके और आकाश देशपांडे के संबंधों को लेकर। ऐसी स्त्री अगर कॉलेज में हो तो हम अपने बेटे–बेटियों को निकाल लेंगे–ऐसा लिखा है उन्होंने।

वैशाली : किन्होंने की हैं शिकायतें? क्या मुझे देखने को मिलेगा?

प्रमिला माली : कुछ बेनामी पत्र भी हैं। तुम दोनों की भेंट के संदर्भ में विस्तार से तफसील देनेवाले। यह बहुत गंभीर है।

वैशाली : कैसे संबंध? कैसी मुलाकातें? कुछ भी बोल रही हैं मैडम आप। हम दोनों में ऐसा कुछ भी नहीं है। साफ झूठ है यह। मेरे विरोध में रचा गया यह षड्यंत्र है। और मैं समझ सकती हूं यह सब किसलिए हो रहा है।

(उसके हम वाक्य पर तीनों भी बेचैन हो जाते हैं। बापट प्राचार्य की ओर देखते हैं। प्राचार्य चश्मा निकालकर उसे पोंछने जैसा कुछ करते हैं। प्रमिला माली भी सचेत हो जाती हैं।)

प्रमिला माली : परंतु क्या आग के अभाव में धुआं निकलता है?

प्राचार्य किर्लोस्कर : मैडम, ऐसा कुछ होगा ऐसा मैनेजमेंट को भी नहीं लगता। आप माली मैडम की बात को समझ लेने की कोशिश कीजिए। कॉलेज के परिवेश में चर्चा किस तरह की चल रही है, इस संबंध में वे बोल रही हैं। प्लीज, डोंट, मिसअंडरस्टंड। और आपके खिलाफ षड्यंत्र रचने का कारण क्या हो सकता है? आप बिना किसी कारण शंका कर रही हैं।

वैशाली : सॉरी सर, पर आप मुझे यह बतलाइए कि पिछले सत्रह वर्षों से आप मुझे देख रहे हैं। मेरा काम आपके सम्मुख है। यह अचानक मेरे बारे में वातावरण दूषित हो जाना इसका क्या अर्थ निकालूं मैं? और आप यह भूल रहे हैं कि आकाश मेरा छात्र था तब से हमारा रिश्ता दोस्ती का है। पारिवारिक स्तर पर भी हमारे संबंध हैं।

प्रमिला माली : वही तो कह रही हूं मैं। आग के पास मक्खन गया कि गलने ही वाला।

वैशाली : *(भयंकर क्रोधित, परंतु खुद को संभालते हुए)* मुझे लगता है कि चर्चा का न्यूनतम स्तर हमें बनाए रखना चाहिए। एक जिम्मेदार प्राध्यापिका के अस्तित्व का सवाल है यह।

(इस पर प्रमिला माली कुछ बोलना चाहती है परंतु तभी प्राचार्य उन्हें रुकने का इशारा करते हैं। बापट साहब की ओर वे कुछ उम्मीद से देखते हैं।)

बापट साहब : बहुत ही सही कहा आपने। इसी कारण तो यहां इकठ्ठे हुए हैं हम सब लोग। आपके भविष्य की चिंता हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

प्राचार्य किर्लोस्कर : मैडम, परंतु यह केवल आपके अकेले का सवाल नहीं है। कॉलेज भी इसमें उलझा हुआ है। आपको कल्पना है क्या कि परसो क्या हुआ? एडमिशन के लिए लंबी क्यू। किसी एक लड़के को एडमिशन नहीं मिल सका, कम परसेंटेज के कारण। तो उसके साथ आए हुए किसी एक पार्टी के कार्यकर्ता ने लाईन में खड़े हुए सबको यह कहा कि, यहां एडमिशन मत लीजिए। "देखो, इस कॉलेज में कैसे धंधे चल रहे हैं? यहां के प्रोफेसर्स ही लफड़ेबाज हैं। फिर छात्रों पर क्या संस्कार पड़ेंगे?" हाथ में पोस्टर लेकर वह जोर–जोर से चिल्ला रहा था। और बाद में वहां इतना शोरगुल हो गया कि उसे ठीक करने के लिए मुझे खुद ही वहां जाना पड़ा। मैडम, यह कॉलेज की इज्जत का सवाल है। अब पेपरबाजी अगर हो गई तो कितनी बदनामी हो जाएगी कॉलेज की। कल ही उस लोकवार्तावाले साहब का फोन आया था। साहबजी ने इधर–उधर की बातें कहकर उसे टाल दिया। *(बापट साहब हां कहते हुए गर्दन हिलाते हैं।)* आप जरा संयम से काम लीजिए सब कुछ।

वैशाली : संयम से तो ले रही हूं। मैंने कहां विवेक को त्यागा है।

प्रमिला माली : *(प्राचार्य के कान से लगकर, सबको आधा–अधूरा सुनाई दे इस पद्धति से)* अब यह विवेक कौन है और। मुझे लगता है...

(प्राचार्य श्रीमती माली को त्रस्त होकर रोकते हैं। तो बापट साहब के चेहरे पर हल्की–सी स्मित रेखा।)

वैशाली : (उद्विग्नता से) मैडम आप....

प्राचार्य किर्लोस्कर : थोड़ा रुकिए तो.... *(प्रमिला माली की ओर देखते हुए और फिर सटपटाते हुए वैशाली की ओर नजर घुमाते हुए)* गजभिए मैडम, हम गंभीर विषय पर बोल रहे हैं।

वैशाली : इस विषय पर बोलने की मेरी तो कतई इच्छा नहीं है। मैं फिर कहती हूं कि कॉलेज की इज्जत जाए, ऐसा कोई आचरण मैंने नहीं किया है। मुझे तो यह चर्चा ही निरर्थक लग रही है क्योंकि मूल में कोई इश्यू ही नहीं है।

प्रमिला माली : मतलब इश्यू तक बात गई है क्या? यह तो बहुत ही भयंकर!

प्राचार्य किर्लोस्कर : *(प्रमिला माली को ॲड्रेस करते हुए)* नहीं, जी ऐसा नहीं है। गजभिये मैडम का कहना है कि जहां मुद्दा ही कुछ नहीं है, वहां यह चर्चा किसलिए?

प्रमिला माली : *(गुस्से से)* फिर.... क्या हमें कोई दूसरा काम नहीं है इसलिए बैठे हैं हम यहां? कितना बिजी शेडयूल्ड है मेरा। परंतु कॉलेज के इतनी गंभीर मीटिंग के कारण अपने सारे कार्यक्रमों को अलग–थलग रखकर आई हूं मैं यहां। इतनी संस्थाओं से जुड़ी हुई हूं मैं, परंतु कॉलेज में कुछ अघटित घटित हो गया तो दूसरा कुछ सुझता ही नहीं है मुझे। चार पांच हजार छात्र–छात्राओं के भविष्य का सवाल है यह!

प्राचार्य किर्लोस्कर : *(प्रमिला माली से त्रस्त, परंतु वैसा न बतलाते हुए फिर से वैशाली की ओर मोर्चा मोड़ते हुए)* मैडम, आप मुद्दा नहीं हैं ऐसा कैसे कह सकती हैं? आप जो कह रही हैं, वह सच भी हो सकता है। किंबहुना आपका ही सच है ऐसा कहूंगा मैं। आप दोनों का रिश्ता निर्मल, शुद्ध है स्वीकार्य। परंतु इसे सिद्ध कैसे करेंगे आप? आप ही बतलाइए, इसमें से कैसे रास्ता निकाला जा सकता है? जाने दीजिए–ऐसा कहकर उपेक्षा करने जैसा मुद्दा नहीं है यह। आपको भी समझ में आएगा ठीक से, अगर आप कॉलेज की दृष्टि से देखेंगी तो। अंततः लोकमत को पूर्णतया नकारा भी नहीं जा सकता। हम कॉलेज चला रहे हैं।
(बापट साहब बीच–बीच में गर्दन हिलाते रहते हैं। इतने में उनका मोबाइल बजता है।)

बापट साहब : हैलो, कौन?... हां... हां... बोलिए... हां... हां... कॉलेज में ही हूं मैं। हां,...ठीक... वही... वही. .. *(हंसते हैं।)* नहीं... नहीं... अभी हमारी मीटिंग चल रही है... बाद में बात करते हैं हम। कहूंगा मैं आपसे। *(मोबाइल बंद करते हैं, प्राचार्य की ओर देखते हुए)* किर्लोस्कर सर, अब मुझे निकलना होगा। चलने दीजिए, आपकी चर्चा पर मैं रुक नहीं सकता।

प्राचार्य किर्लोस्कर : नहीं, नहीं। रुकेंगे यहीं पर साहब जी हम। *(सब की ओर देखते हैं। कोई कुछ भी बोल नहीं रहा है।)* चलिए, फिर, निकलेंगे हम लोग।
(प्राचार्य किर्लोस्कर, बापट साहब और प्रमिला माली कॉन्फ्रेंस रूम के बाहर निकल जाते हैं। वैशाली उदास अवस्था में कुर्सी पर ही बैठी रहती है। धीरे–धीरे अंधेरा होता है।)

दृश्य–छठा

(स्थान : ड्राईंग रूम। वैशाली बेचैन। कमरे में चक्कर लगा रही है। अचानक कुर्सी पर बैठती है, क्षणभर बाद उठती है, खिड़की से झांकती है, फिर चक्कर लगाती है, टीवी ऑन करती है, क्षणभर बाद बंद भी करती है। बेल बजती है। वैसे ही तेजी से दौड़ते हुए दरवाजा खोलने जाती है। अमिताभ आता है। अमिताभ के गले लगकर रोती है।)

अमिताभ : क्या हो गया वैशू? ऐसा क्यों कर रही हो? क्या हुआ क्या? बोल ना

वैशाली : सब कुछ खत्म हो गया है रे अमू।

अमिताभ : मतलब? क्या खत्म हुआ? पहेली में क्या बोल रही हो?

वैशाली : दस मिनट पूर्व प्राचार्य का फोन आया था। उन्होंने मुझे त्यागपत्र देने के लिए कहा है।

अमिताभ : ...क ...क्या?... *(वह भी गड़बड़ा जाता है। उसे बाहों में पकड़कर कोच पर बिठाता है। खुद भी बैठता है।)*

वैशाली : उन्होंने कहा, कॉलेज आप पर कोई एक्शन नहीं लेगा। आप पर विश्वास है कॉलेज का।

परंतु आपका त्यागपत्र देना यही औचित्यपूर्ण होगा, इस सिचुएशन में। और आप वह दें। कॉलेज के भविष्य का भी सवाल है।

अमिताभ : अरे, यह तो सीधे–सीधे अन्याय है। यह तो धोखा है।

वैशाली : परंतु उन्होंने यह सब इस प्रकार से तैयार किया है कि, मुझे भी कोई दूसरा विकल्प सूझ नहीं रहा है।

अमिताभ : क्या कह रही है तू वैशू? अरे, कितने गंदे, झूठे आरोप लगाकर इतने वर्षों से नौकरी करनेवाली एक सीनियर औरत को नौकरी से निकाल बाहर कर रहे हैं वे। कितना गंभीर मुद्दा है यह! अब कुछ नहीं। खामोश नहीं बैठना है हमें। हम प्रेस में जाएंगे, संघटना की ओर जाएंगे, चाहे तो रणजीत काका से बात करेंगे। वे निश्चित ही कुछ करेंगे। क्या मनमाना कारोबार है इनका... मानो पेशवाओं का ही राज हो।

वैशाली : अरे बाबा, बहुत ही भड़काया है बापट जी ने इस प्रकरण को। मैंने अगर त्यागपत्र नहीं दिया तो पेपरबाजी भी करने में आनाकानी नहीं करेंगे वे। प्राचार्य ने कहा भी मुझे कि मैडम, क्या कोई नहीं हैं आपके परिचित? अब आप ही प्रेशर लाइए बापट साहब पर। जरा ज्यादा ही तान रहे हैं वे। और अमू, एक बात ध्यान में रखना, आकाश की शादी तय हो गई है, वह शायद टूटेगी इस प्रकरण के कारण।

अमिताभः और क्या इसलिए हम सब इसे सहते रहें? संभव नहीं है। बाबासाहेब की संतान हैं हम। संघर्ष करना क्या हमलोगों के लिए नया है? और फिर इसका डर क्यों? हमारी कोई गलती नहीं है।

वैशाली : तुझे कैसे बतलाऊं रे? मुझे सब ठीक लगता है तुम्हारा। आकाश को भी परसो मैंने यही कहा था ना? परंतु आज वैष्णवी का फोन आया था। उसके पिताजी ने बड़ा मुद्दा किया है इसे। यह विवाह टूटेगा ही ऐसा वे कह रहे हैं।

अमिताभ : तो फिर...

वैशाली : मुझे तो लगता है कि पिताजी की ढाल वह आगे कर रही है। शायद उसे भी कुछ संदेह है। आज मुझसे वह भी ठीक से नहीं बोली। और एक बार तो सीधे कहा भी उसने कि मैडम, आप माफी मांग लीजिए ना। बेमतलब का प्रैस्टिज का मुद्दा क्यों बना रही हैं आप?

अमिताभ : अरे भाई, उसे क्या समझ में आ रहा है इसमें का? उसे केवल अपनी गृहस्थी दिख रही होगी। उसकी बातें तो मन पर बहुत मत लें। परंतु जो हुआ, वह बहुत गंभीर है।

वैशाली : अब हमलोग क्या करें रे अमू? मुझे तो लगता है कि सीधे त्यागपत्र दे दें। रिटायरमेंट के बाद के सभी बेनीफिट्स मिलवा देने की बात कॉलेज ने की ही है। हम दोनों कुछ तो नया करेंगे, नया काम शुरू करेंगे।

अमिताभ : पागल हो गई हो क्या तू? अरे, कितनी डिप्रेस्ड हो गई हो। लड़ाई न करते हुए अपने सारे हथियार म्यान में करने निकली है तू। सुन, लोकवार्ता के संपादक से मैं आज ही बात करता हूं। तू धीरज मत छोड़। अरे, हम दोनों के विवाह के समय क्या कम शोरगुल हुए थे? क्या–क्या किया था हमने, विशेषतः तू सभी बातों का सामना कर रही थी ना, उस समय। भूल गई हो क्या वह सब कुछ?

वैशाली : तब हमारी आयु 25 के आस–पास थी! अब चालीस क्रॉस कर चुके हैं हम दोनों।

अमिताभ : ऐसी निराश मत हो जा वैशू? हम दोनों आकाश से बात करेंगे। तू वैष्णवी से बात कर। सब मिलकर रास्ता निकालेंगे। पर मुझे एक बात बता, आकाश है ना इस लड़ाई में हमारे साथ? नहीं तो, वह खुद की सेटिंग अलग पद्धति से करेगा तो... अंततः वह तो...

वैशाली : नहीं, रे। वह वैसा नही है। मुझे नहीं लगता कि वह मेरे पीछे कुछ गड़बड़ करेगा। जो भी उसे करना है, मुझसे कहकर ही करेगा। यूं भी वह थोड़ा सा डरपोक ही है।

अमिताभ : मुझे लगता है कि आज ही हम विजयंता से बात कर लेंगे। कोर्ट में तो हमें जाना ही होगा। वही बताएगी हमें कि केस की तैयारी कैसे करनी होगी...

वैशाली : ओके, पर तू कहां गया था? आज तो सबेरे ही बैठनेवाला था ना, लिखने के लिए।

अमिताभ : अरे बाबा, सबेरे–सबेरे ही आनंद का फोन आया था। उन्हें यशदा का मूल अहवाल मिल गया। अहवाल की उस फाईल को वे बहन के घर भूल गए थे। उसे लाने गया था। उसकी बहन ने मेरा काफी समय लिया। तुझसे मिलने की बात कह रही थी। आनंद जी ने शायद काफी कुछ कहा है तुम्हारे बारे में उसके सम्मुख।

वैशाली : क्या करती है वह?

अमिताभ : यहीं, सुप्रभात थिएटर में फिल्म ॲप्रिसिएशन का कोर्स चलाती है। खैरलांजी के संबंध में उसे बहुत इंटरेस्ट है। पूछ रही थी मुझसे कि क्या हुआ है?

वैशाली : मैं क्या कहती हूं अमू। मुझे एक क्लीक हो गया है देख अभी।

अमिताभ : क्या है वह?

वैशाली : यह जो मेरे कॉलेज में घटित हो रहा है मेरे संदर्भ में, उसका कुछ हिस्सा अगर हम फिल्म में डाल दें तो?

अमिताभ : मतलब?

वैशाली : सुनो, 'खैरलांजी' में हत्याकांड हो जाना, पूरे भोतमांगे परिवार का उसमें बली जाना, मनुष्य के अस्तित्व को ही ऐसी गंदी पद्धति से खत्म कर देना, इससे अलग क्या घटित हुआ है यहां, मेरे सबंध में। तफसील अलग है इतना ही ना। मूलतः स्त्री व्यवस्था से प्रश्न पूछे, चुनौती दें, यह पचनेवाली बात नहीं होती है यहां। विवाह न करते हुए इकट्‌ठे रहने का निर्णय जब हम दोनों ने लिया था, तब कितना शोरगुल हुआ था, कॉलेज में–याद है ना, तुझे अमू। मुझे तो बहिष्कृत ही किया गया था उन दिनों। खैरलांजी के लिए मंत्रालय में किए गए निदर्शन में मैंने हिस्सा लिया था, यह कितना तकलीफ दे गया है मैनेजमेंट को। उन्हें मैं खतरनाक लग रही हूं। यहां भी एक खैरलांजी है ही। मनुष्य को शक्तिहीन करनेवाला। उसे नेस्तनाबूद कर देनेवाला। और फिर औरत को जिंदगी से उठा देना तो बहुत ही आसान है यहां। सुरेखा भोतमांगे पर भी ऐसा ही अनैतिक होने का आरोप लगाया था गांव ने। और बाद में मीडिया ने उसे उठाया।

अमिताभ : हां, यह तो और भी अच्छा होगा। खैरलांजी केवल दूर–दराज के गांवों में ही नहीं होता। महानगरों में भी ऐसी घटनाएं घटित होती रहती हैं निरंतर। खैरलांजी हो या मुंबई–मानसिकता तो वही है ना, दलित विरोधी। महानगरों की पद्धतियां अधिक सोबर हैं इतना ही क्या वह फर्क है। मारते ही हैं वे भी, परंतु हथियार को शुगर–कोटिंग करके। धीमे–धीमे। अतिशय शांति से, ठंडे दिमाग से। अब मेरे दिमाग में एक अलग ही विचार शुरू हुआ है।

वैशाली : कैसा विचार?

अमिताभ : इस फिल्म में दो संघर्ष होंगे–सायमलटेनिसली। एक प्रियंका का और दूसरा तेरा। बहुत भीतर से उलझ गया हूं मैं इस विषय में। कल नेट पर ॲट्रॉसिटी न्यूज की रिपोर्ट पढ़ रहा था मैं। फोटोग्राफ्स देखें वहां के कुछ। तुझे कहता हूं वैशू, मैं तुरंत इमोशनल होनेवाला आदमी नहीं हूं। परंतु प्रियंका, सुरेखा और रोशन, सुधीर इसकी तस्वीरें उस हाल में देखकर मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हुए। क्या बताऊं एक के बाद एक ने रेप किया था, उन दोनों पर। अब मेरी बारी, अब मैं–ऐसा नंबर ही लगाया था भीड़ ने। रोता रहा मैं। *(अमिताभ की आंखें भर आती हैं। रूमाल से पोंछता है।)*

वैशाली : भयावह है यह सब कुछ? उन लोगों को कुछ भी नहीं लगता होगा क्या यह सब करते समय। प्रियंका की योनी में तो उन्होंने अक्षरशः डंडा घुसाया था। भाई को बहन के साथ संभोग करने कहा उन्होंने। जब उसने नकार दिया, तब उसका अंडकोश फोड़ा गया। प्रियंका को पढ़ानेवाला एक शिक्षक भी था इस अभियान में, सबके साथ।

(दोनों भी एक क्षण स्तब्ध हो जाते हैं। पॉजेस)

अमिताभ : आनंद जी ने क्या कहा याद है न तुझे कि मुझे डाक्यूमेंटरी नहीं करनी है। हत्याकांड जैसे

हुआ, वैसे बताना नहीं है उन्हें। वास्तव में डाक्यूमेंटरी और फिल्म इनमें जो फर्क आनंद जी बतला रहे हैं, वैसा वह फर्क नहीं है। डाक्यूमेंटरी हो या फिल्म, उसे तैयार करनेवाले डायरेक्टर भी, कैमरे के पीछे की आंख ही तय करते रहती है कि क्या बतलाना है उन्हें। जैसे फिल्म सच्ची या झूठी हो सकती है, वैसे डाक्यूमेंटरी भी।

वैशाली : पर अब हम जो परिवर्तन करने जा रहे हैं, वह बहुत ही मेजर साबित होगा ना! और...

अमिताभ : तुझे कहता हूं मैं वैशू, आनंद जी को यह कतई पसंद नहीं आएगा क्योंकि उनका जो प्रिय सिद्धांत है–कि शहरों की स्थिति–जातीयता के संदर्भ में पूर्णतः बदल गई है–इसको तो यह घटना काटती है।

वैशाली : जाने दो उनका सिद्धांत और उनका दर्शन! डाले गधे की गांड में। सबके सब पाखंडी हैं, साले। अभी भी बदलने को तैयार नहीं हैं। यह कुछ नहीं, उन्हें पसंद आए अथवा न आए अपना। इस फ्रेमवर्क को तुझे कतई बदलना नहीं चाहिए। अगर उन्होंने स्क्रिप्ट नकारा तो तू सीधे उपन्यास ही लिख ना, इस पर। अच्छा होगा वह। और अब तो संघर्ष के और भी डायमेन्शन आ गए हैं। वैशाली और आकाश के सोकॉल्ड संबंधों के। और इसमें से उसे खत्म करने के।

अमिताभ : रुक, रुक, अब तो एक और अफलातून बात सूझ रही है मुझे।

वैशाली : क्या?

अमिताभ : फिल्म की स्क्रिप्ट में वैशाली और आकाश में सचमुच प्रेम का रिश्ता है ऐसा अगर बताएं तो. .. और वे दोनों कह रहे हैं कि यह हम दोनों का व्यक्तिगत प्रश्न है। दो ॲडल्ट व्यक्तियों में स्थित स्वेच्छा का यह संबंध है। उसका ऐसा सार्वजनिक इश्यू करने का कोई अधिकार कॉलेज को नहीं। इससे यह फिल्म भिन्न ही स्तर पर चली जाएगी। व्यक्तिगत बनाम् सार्वजनिक इसकी प्रस्तुति करनेवाली फिल्म।

वैशाली : ठीक है।

अमिताभ : ओके, मैं विजयंता को फोन करता हूं। तू वैष्णवी से कब मिलनेवाली है?

वैशाली : मिलूंगी रे जल्दी ही। अब यह जो तुम्हारे दिमाग में है ना, वह जल्दी ही लिखकर निकाल। समय नहीं जाना चाहिए। सचमुच सारा टेंशन हलका हो गया मेरा इस बातचीत से।

अमिताभ : तो फिर त्यागपत्र नहीं देना है। लड़ना है। ओके।

वैशाली : येस बॉस!

(दोनों एक दूसरे के निकट आते हैं। अंधेरा।)

अंक–दूसरा

दृश्य–पहला

(कॅफे, कॉफी डे, छात्र–छात्राएं बैठी हुईं। एक कोने में वैष्णवी बैठी हुई हैं। हाथ में पेन, उससे खेलती हुई। दरवाजे की ओर दृष्टि। वैशाली की प्रतीक्षा कर रही है। वैशाली आती है।)

वैष्णवी : आइए मैडम।

वैशाली : सॉरी, मुझे देर हो गई।

वैष्णवी : मैं भी अभी–अभी आई हूं मैडम। दस मिनट हुए केवल।

वैशाली : *(हंसते हुए)* दस मिनट तो काफी हो गए ना! अच्छा बोल, क्या ऑर्डर दूं?.....कॉफी?

वैष्णवी : चलेगा, मैडम। आय एम रिअली सॉरी, मुझे कल शाम को आकाश ने कहा, कॉलेज में जो हो रहा है वह।

वैशाली : जाने दो, सच कहूं–यह अपेक्षित ही था। परसो कॉलेज में निकले उस मोर्चे के बाद इससे अलग कुछ होनेवाला ही नहीं था।

वैष्णवी : क्या तय किया है अब आपने?

वैशाली : अर्थात् संस्पेशन के ऑर्डर को चैलेंज करेंगे कोर्ट में। काम शुरू भी हो गया है, उस फ्रंट

पर। तू बोल।

वैष्णवी : यह बहुत ही गलत हो गया है, मैडम। आपके साथ सचमुच अन्याय हो गया है। मुझे बहुत बुरा लग रहा है। आकाश को भी।

वैशाली : इस बुराई में अच्छा यही है कि आकाश पर कोई एक्शन नहीं लिया गया है। मुझे तो उसी की चिंता लगी हुई थी। उसका और प्रकारांतर से तेरा भी फ्यूचर अटक जाता इस पूरे प्रकरण में। तेरे घर के फ्रंट का वातावरण अब कैसा है?

वैष्णवी : पप्पा, बहुत चिढ़े हुए हैं। बहुत समझाया मैंने उन्हें। आकाश भी कल रात घर आया था। वह भी काफी बोलते रहा—मम्मी पप्पा से। मम्मी का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। परंतु पप्पा अलबत्ता बेमतलब का तान रहे हैं।

वैशाली : सब कुछ ठीक हो जाएगा। तेरे पप्पा भी नॉर्मल हो जाएंगे। समय बीतना होगा कुछ। सब कुछ समाचारपत्रों में आ जाने से उनका बेचैन होना सहज—स्वाभाविक है।

वैष्णवी : आपके मिस्टर आयमीन अमिताभ सर, कैसे हैं?

वैशाली : मेरे साथ जो अन्याय हुआ है, उससे वह काफी दुखी है। मुझे तो इतना डिप्रेशन आया था कि मैंने तो उसे कहा भी कि सभी बेनीफिट्स अगर कॉलेज दे रहा है, तो मैं खुद त्यागपत्र दे दूंगी। परंतु उसे यह कतई पसंद नहीं है। संस्पेशन के ऑर्डर कॉलेज से मिलने पर कोर्ट में जाने के लिए अमिताभ का ही आग्रह है।

वैष्णवी : नहीं, मैं उस बारे में नहीं बोल रही हूं। उन्हें तकलीफ होना स्वाभाविक है।

वैशाली : फिर किस संबंध में बोल रही है तू?

वैष्णवी : *(कुछ संकोच से)* नहीं... मेरा मतलब.... मतलब... मुझे ऐसा कहना था... कि... आकाश और आपके संबंध में यह जो सब कुछ हुआ उससे अमिताभ जी को तकलीफ हुई है क्या? पूरे कॉलेज में और अब तो पेपरों में भी जो लिखकर आ रहा है। उन्होंने कभी भी नहीं कहा है क्या इस संबंध में?

वैशाली : उल्टे हमेशा बोलते रहते हैं इस विषय पर।
(वैष्णवी के चेहरे पर आश्चर्य के भाव) तुझे बतलाती हूं वैष्णवी, एक—दूसरे से कभी कुछ छिपाएंगे नहीं, सच ही बोलेंगे चाहे वह जितना ही वह जानलेवा हो। हम दोनों जब पहली बार मिले और एक दूसरे के प्रेम में फंस गए तभी तय किया था हम दोनों ने यह। हम दोनों के बीच का अलिखित करार ही है—कहो ना। कितनी भी तकलीफ हो तो भी सहना, इसी से रिश्ते ठीक रहते हैं।

वैष्णवी : परंतु मैडम संदेह, डर, असुरक्षा ऐसा कुछ कभी नहीं आया आप दोनों में। ये भावनाएं तो पूर्णतया ह्यूमन ही है ना! और कुछ बातें तो बोल ही नहीं सकते। विशेषतः पति से कि वह पति है इसीलिए। यह रिश्ता ऐसा चमत्कारिक है कि, किसी समय वह एक दूसरे को सर्वाधिक निकट लाता है और किसी समय दोनों में काफी दूरी भी पैदा करता है।

वैशाली : *(हंसती है)* मनोविज्ञान की छात्रा है ना तू? तो फिर एकदम ठीक—ठीक बोल रही है तू। तू, तेरा और आकाश का रिश्ता जीकर तो देख पहले। रिश्तों में पहले ठीक—ठाक, पूरी तरह से, उसमें डूबकर।

वैष्णवी : परंतु मैडम यह तो सभी ओर दिखलाई देनेवाला चित्र है। बहुत टिपिकल रहते हैं अनेक घर इस संबंध में। आपका घर होगा शायद इसके लिए अपवाद।

वैशाली : वैष्णवी, हम ऐसा सिर्फ बोलते ही नहीं, जीते भी हैं। ऐसे जीने के, ऐसे रिश्ते के अनेक तनाव होते हैं। कुछ ऐसे प्रसंग आते हैं कि लगता है कि पैर तले की जमीन खिसक जा रही है। ऐसे जानलेवा तान—तनाव होते हैं। हम दोनों भी उसमें से जा चुके हैं। सब कुछ सीधा—सादा नहीं होता यहां। किसी भी रिश्ते में नहीं होता। ऐसा अगर कोई कह रहे हैं तो बहुत बड़ा धोखा दे रहे हैं, वे एक दूसरे को।

वैष्णवी : इसी पर तो चलती है ना गृहस्थी मैडम? फिर ऐसी सफल गृहस्थी की सिल्वर जुबिली,

गोल्डन जुबिली मनाई जाती है।

वैशाली : ठीक बोल रही है तू। कुछ अपवाद छोड़ दें तो ऐसी गृहस्थी मतलब कुछ भी करके टिकाए रखना। सभी सोशल प्रेशर लेते हुए। परंतु उसमें कोई अर्थ नहीं है रे! अमिताभ और अपने रिश्ते में हमने कभी भी सामाजिक चौखट का दबाव स्वीकार नहीं किया है। तुझे पता है, आकाश ने कहा भी होगा तुझसे, विवाह न करते हुए हम चार–पांच वर्ष इकट्ठे रह चुके हैं। कुछ तकनीकी बातें सामने आईं इसलिए हमने शादी की। केवल औपचारिकता के रूप में। परंतु यह रिश्ता इसलिए कठिन होता है, नाजुक होता है, क्योंकि किसी को बतलाने हेतु, सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु ऐसी गृहस्थी होती ही नहीं। इस रिश्ते की नींव यहां से वहां तक सिर्फ प्रेम और प्रेम ही होता है। प्रेम ही न हो तो रिश्ते का केवल कंकाल ही रहा ना।

वैष्णवी : फिर भी मुझे एक उत्सुकता है मैडम। सर ने कभी नहीं पूछा आपसे आकाश और आपके संबंधों के बारे में।

वैशाली : पूछा न! पर तू जो कह रही है, उस अर्थ में नहीं। मूल में उसे तो ठीक से मालूम है कि आकाश और मुझेमें ऐसा कुछ भी नहीं है। अगर होता तो भी उसका कोई आक्षेप न होता इस पर।

वैष्णवी : ऐसे कैसे? यह तो मुझे और भी विचित्र लगता है।

वैशाली : वैष्णवी, तू भूल रही है... अरे, आंदोलन की पृष्ठभूमि है अमिताभ की। अब यह जो मुद्दा है ना, कॉलेज ने, आकाश और मेरे बारे में... मतलब हम दोनों में ऐसा कुछ भी न होते हुए भी... इस पर अमिताभ का कहना है कि परिवर्तन हेतु काम करनेवाले, वैचारिकता से रिश्ता बतलानेवाले भी मतभेद हुआ कि एक दूसरे के व्यक्तिगत प्रश्न उकेरकर निकालते हैं। एक दूसरे को खत्म करने के लिए। प्रगतिशील खेमों में अगर ऐसा होता है तो यहां भी यही शुरू है, इसमें क्या आश्चर्य!

वैष्णवी : परंतु अब पब्लिक में इसकी चर्चा हो रही है, पेपर में आपका नाम आकाश से जोड़ा जा रहा है, इसकी उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती?

वैशाली : वैष्णवी, इस पर अमिताभ का क्या कहना है, तुझे बताती हूं। कहना क्या है उसकी भूमिका ही है वह! दो समझदार व्यक्तियों में स्थित संबंध यह पूर्णतः उन दोनों का ही विषय होता है। होना भी चाहिए। तीसरे के द्वारा उन दोनों के रिश्ते की इंटिग्रिटी को चैलेंज करना, उस पर टीका–टिप्पणी करना, नैतिकता–अनैतिकता के मुद्दे लाना पूर्णतः गलत है।

वैष्णवी : ऐसे कैसे हो सकता है? यह तो स्त्री–पुरुष रिश्तों के जड़ पर ही प्रहार करना है।

वैशाली : वैष्णवी, इस विषय पर विस्तार से बताने की जरूरत है। तू आ जा ना, घर पर। अमिताभ से बातचीत कर।

वैष्णवी : मैडम, मुझे एक और बात के लिए आपसे सॉरी कहना है।

वैशाली : क्यों रे! किसलिए?

वैष्णवी : मैडम, मैं भी आकाश और आपके संबंध में... *(उसका चेहरा गंभीर हो जाता है। अचानक वह खामोश हो जाती है।)*

वैशाली : अरे, स्वाभाविक है तेरी प्रतिक्रिया। तू क्यों बुरा समझ लेती है? मैं समझ सकती हूं। कुछ भी मत बोल, उस विषय पर। बेकार में तुझे तकलीफ होगी।

वैष्णवी : मैडम, मुझे बोलने दीजिए। अभी–अभी तो मैं उस मानसिकता से बाहर निकल रही हूं। आपको आश्चर्य होगा पर सुनकर कि पिछले वर्ष मैं सायकिॲट्रिस्ट के पास जाती थी इसके लिए।

वैशाली : क्या कह रही हो?

वैष्णवी : हां, मैडम। आकाश की सारी बातें मुझे ठीक लगती। वह झूठ बोलनेवाला आदमी नहीं है। आप दोनों में ऐसा कुछ भी नहीं यह सब मैं समझ रही थी। परंतु बात कुछ बनती नहीं थी। बहुत असुरक्षित हो गई थी मैं क्योंकि आपके बारे में ही बोलते रहता था आकाश निरंतर।

मैडम ने ऐसे कहा, मैडम ने वैसा कहा। आपने पिछले वर्ष उसकी वर्षगांठ पर जो कमीज ही थी, उसे मैंने पहनने नहीं दिया है आजतक।

वैशाली : *(हंसने लगती है।)* ओह! तो यह कारण है उसका। मैंने उसे दो तीन बार झटका भी सहज रूप से, शर्ट के बारे में, तो उसने कहा, लॉण्ड्रीवाले को दिया था, और वह वापिस मिला ही नहीं। वहीं शायद गुम हो गया।

वैष्णवी : आज मुझे बहुत खुला लगता है, आपसे बातचीत करने के बाद। बिना किसी मतलब के, इतने महीनों से बोझ ढोती रही मैं अपने कंधों पर। आकाश तो हमेशा कहता हम मैडम से ही बोलेंगे इस विषय पर। इससे मैं और भी चिढ़ जाती उस पर।

वैशाली : चलो, अब तो सब क्लीअर हो गया ना! मैं निकलती हूं अब। तू और आकाश, दोनों आ जाओ शनिवार को। खाने पर ही आ जाओ। अमिताभ को भी अच्छा लगेगा तुझसे इस विषय पर बातचीत करके। इन दिनों वह एक फिल्म की स्क्रिप्ट लिख रहा है।

वैष्णवी : अच्छा! अलग ही काम है ना यह। क्या थीम है इस फिल्म की?

वैशाली : खैरलांजी... और वैष्णवी कॉलेज में जो यह सब कुछ चल रहा है ना, उससे भी जोड़कर लेनेवाला है वह।

वैष्णवी : खैरलांजी? खैरलांजी से मतलब? क्या है वह?

वैशाली : *(कुछ क्षण पॉज लेती है, दीर्घ सांस छोड़ती है)* हं, तुझे कुछ भी पता नहीं है शायद इस संबंध में। खैर, वह विषय बड़ा लंबा है, संक्षेप में नहीं बता सकती। देर हो गई है। शनिवार को आ रहे हो ना दोनों घर पर? तब विस्तार से बात करेंगे हम। ठीक, ओके।

वैष्णवी : येस मैडम।

(दोनों भी बाहर जाते हैं। अंधेरा)

दृश्य–दूसरा

(ड्राईंग रुम, अमिताभ और वैशाली सोफे पर बैठे हुए हैं। सामने टी पॉय पर कागज फैले हुए हैं। अमिताभ के हाथ में कुछ कागज है। उसे पढ़कर वह सुना रहा है। हाथ में एक कागज वह नीचे रखता है।)

अमिताभ : कैसे लगता है वैशू तुम्हें? ठीक चल रहा है ना!

वैशाली : हां, इस समय तो सब ठीक चल रहा है।

अमिताभ : अब प्रियंका बोर्ड में जाती है, वह सियुएशन मैं पढ़ता हूं। (कागज हाथ में लेकर पढ़ने की शुरुआत करता है।) सुना है, प्रियंका बोर्ड में आई है, यह समाचार गांव में फैलता है और गांव में मनहूसियत छा जाती है। इधर भोतमांगे के घर में जलसा शुरू है। मां ने, सुरेखा जी ने प्रियंका के लिए खरीदी लेडीज सायकिल दरवाजे पर खड़ी है। सजी हुई। प्रियंका सायकिल चलाते–चलाते पड़ोस के खेत के शिंदे के यहां जाती है। पेड़े देती है। और फिर वह गांव की दिशा में निकलती है। गोपाल सर जी को तो पेड़े देने ही चाहिए। भले ही मुझ पर वे गुस्सा करते हो तो भी उनका गणित पढ़ाना ठीक ही था। राजाराम पान की गद्दी पर गोपाल सर जी का विकास, सरपंच का युवराज आदि सभी आवारा युवकों का ग्रुप खड़ा है। उन्हें टालना संभव ही नहीं था। तो भी उधर न देखते हुए वह पैडल मारती रहती है। इतने में कोई तो उसकी ओर पत्थर फेंकता है। दूसरा सीटी बजाता है। एक कहता है, देखो, देखो, सरकार के दामाद की बेटी जा रही है। खुद को क्या समझती है ऐश्वर्या राय ही मानो। सभी खिलखिलाकर हंसने लगते हैं। अब एक और पत्थर उसकी दिशा में आता है। अब अलबत्ता वह सायकिल रोकती है। उनकी ओर जाती है। उसकी इस अनपेक्षित कृति से वे थोड़े से सकपकाते हैं। सब पीछे सरक जाते हैं। वह गद्दी पर जाती है। रामाराम को पेड़े देती है। और फिर से सायकिल पर से निकल जाती है। इस घटना से उनकी बोलती ही बंद हो जाती है।

वैशाली : मुझे लगता है कि इसी प्रसंग को जोड़कर सावित्रीबाई का भी प्रसंग बतलाया जा सकता है। उन पर ऐसे ही कीचड़ फेंक दिया जाता था। जब वे स्कूल में पढ़ाने के लिए निकलती थी। मतलब, डेढ़ सौ से अधिक साल बीत गए। परंतु अभी भी वह मानसिकता क्यों नहीं बदल सकी है—ऐसा प्रश्न भी इसमें खड़ा किया जा सकता है। सूचकता से।

अमिताभ : प्रत्यक्ष पटकथा लिखते समय इसमें और भी परिवर्तन होंगे। अब तो मैं तुम्हें कुछ प्रसंग स्कूल से बतला रहा हूं। अब एक और प्रसंग पढ़ता हूं। प्रियंका और राजेंद्र के बीच का। (पढ़ने लगता है) राजेंद्र उसी गोपाल सर के बड़े भाई का लड़का। वह कॉलेज में पढ़ रहा है। उसे प्रियंका अच्छी लगती है। प्रियंका को भी वह अच्छा लगता है। उसके पिता नागपुर में नौकरी करते हैं। परंतु उन्होंने अपनी पूरी गृहस्थी यहीं खैरलांजी में रखी है। खेती के लिए। घर में शिक्षा का वातावरण है। अर्थात् घर में किसी को इस बात का पता नहीं है कि प्रियंका और राजेंद्र में कुछ चल रहा है। और अगर पता चल जाए तो काफी गहजब हो जाएगा—इसमें कोई संदेह नहीं। प्रियंका 10वीं के अध्ययन के लिए उसके यहां जाती थी। उसके कॉलेज में तब उनमें बातचीत होती। दोनों भी घूमते। केवल तीन महीने में इन दोनों के प्रेम ने इतनी गति ली की शादी की कसमें भी खाई गईं। अब जैसे—जैसे गांव और भोतमांगे में शुरू हुआ संघर्ष गंभीर होने लगा, वैसे—वैसे राजेंद्र की बेचैनी बढ़ने लगी। वह कई बार प्रियंका को कहता है कि उसके परिवार को गांव छोड़कर निकल जाना चाहिए। अपनी जमीन को वे गांव में ही किसी को बेच दे और झगड़े का मूल कारण ही मिटा दे। भोतमांगे पर कुछ तो अघटित घटने जा रहा है, इसका सुराग उसे मिल चुका था। प्रियंका इसके लिए तैयार नहीं है। उसे अपनी मां की भूमिका इस संदर्भ में पूर्ण रूप से ठीक लगती है। गांव से घबराकर भाग जाने का मतलब है कि हम कहीं भी जीने के लायक नहीं हैं—ऐसा ही होता है ना! जब राजेंद्र इस मुद्दे को बहुत ही खींचता है तब वह गांव छोड़ देने की बात को पूर्णतः नकारती है। इसके बाद राजेंद्र उसे टालने लगता है। सामने आई कि ठीक से उससे बात तक नहीं करता। वह कई बार उससे सीधे बात करने का प्रयत्न करती है, परंतु वह लिफ्ट नहीं देता। अंततः परीक्षा खत्म होते समय वह उसे दत्त टिकड़ी के पास मिलती है। उसे कहती है कि मुझ पर गुस्सा मत कर। नहीं आऊंगी मैं तेरी जिंदगी में। बहुत कुछ करना है मुझे। और मैं वह करुंगी अपनी मां, दादा आदि की सहायता से। तू घबरा मत। मैं अपने रिश्ते को लेकर एक शब्द भी कभी नहीं बोलूंगी। तू अब नागपुर को चला जा। शिक्षा पुरी कर। मैं तुझ पर कभी भी नाराज नहीं रहूंगी।

वैशाली : परंतु अमू, प्रियंका का प्रेम प्रकरण क्यों ले आया है तू? आनंद जी कह रहे हैं इसलिए? पर हम तो उनके फ्रेमवर्क को नकारने को तय कर चुके हैं। फिर यह ऐसा क्यों?

अमिताभ : वैशू, इसके माध्यम से हम जातीयता के मुद्दे को और अधिक स्पष्ट कर रहे हैं।

वैशाली : वह कैसे क्या?

अमिताभ : देखो ना, कुछ भी हो राजेंद्र उच्च जाति से है। वह उससे भले ही प्रेम करता हो तो भी गांव का संघर्ष जैसे—जैसे भड़कने लगता है, वैसे—वैसे वह उससे दूर जाने का निर्णय लेता है। भोतमांगे परिवार का गांव से टूटने की एक प्रक्रिया का हिस्सा उसके दूर होने से पूरा हो जाता है। आनंद जी के फ्रेमवर्क में प्रियंका लार्जर दॅन लाइफ—ऐसा कैरेक्टर है। मतलब यहां आनंद जी को उसे निर्दोष बतलाना है। मतलब वह सवर्ण होते हुए भी दलित लड़की से प्रेम करता है और वह उसे नकारती है।

वैशाली : ओह ठीक है पर। आगे क्या है? तेरे दिमाग में? और भी लिखा है क्या?

अमिताभ : हां, सबेरे से बैठा हूं ना! तू विजयंता के यहां गई ना, तबसे। क्या निश्चित हुआ तुम्हारा? सस्पेंशन के ऑर्डर का कैसे उत्तर दें इस संबंध में बोली वह कुछ?

वैशाली : वह मैं सब बताऊंगी तुम्हें विस्तार से। पहले तू यह सब पढ़ अच्छी लिंक लग गई है तेरी। मुझे बहुत क्युरिऑसिटी है कि यह सब कुछ तू आगे कैसे ले जाएगा इसकी।

अमिताभ : हं, अब एक कथानक है पुलिस से संबंधित। अभी तक मुझे भी यह पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो पाया है। परंतु उसके मुख्य मुद्दे तुझे बताता हूं। सिद्धार्थ गजभिये की मारपीट के केस में प्रियंका और उसकी मां गवाह देने आंधलगांव पुलिस स्टेशन जाती हैं। वहां वे अपना गवाह लिखकर देती हैं। जवाब लिख लेनेवाला पुलिस वे जो–जो बतला रही हैं, उनमें से प्रत्येक बात पर प्रश्न पूछते जाता है। अपराधी के नाम की बार–बार पूछताछ करता है। उन्हें असमंजस में डाल देता है। इतना ही नहीं वे जो भी घटित हुआ वह बतलाती हैं और वह अलग ही लिखता है। इस कारण प्रियंका की मां में और उस पुलिस में काफी तू तू, मैं मैं हो जाती है। उनकी गवाह जब चल रही होती है तभी खैरलांजी का सरपंच पीएसआय से मिलने के बहाने वहां आता है। उसे देख दोनों बेचैन हो जाती हैं। वह भी उन्हें क्रॉस करने लगता है। धमकी भी देता है। प्रियंका उससे विवाद करने लगती है। मां प्रियंका को चुप कराती है। इस गवाह के बाद प्रियंका मिलिटरी में जाने का निश्चय पक्का करती है। उसका मामा सिद्धार्थ गजभिये यह सादा पुलिस पटेल था तो भी उसकी ताकत उसने देखी है। खैरलांजी में भोतमांगे की और से सर्वाधिक समर्थ ऐसा इंटरव्हेंशन सिद्धार्थ ही करते रहता है। इस प्रसंग द्वारा पुलिस ओर गांव का भोतमांगे के विरोध में एक हो जाना बतलाया जा सकता है। और व्यवस्था के पेट में स्थित महत्वपूर्ण जगह पर प्रियंका की जाने की इच्छा क्यों हुई इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

वैशाली : अरे हां, तुझसे एक बात कहनी रह ही गई। सबेरे छाया जी का फोन आया था, कल आ रही हैं वे, और उन्होंने कहा कि अगले सप्ताह में निदर्शन है। गुजरात पुलिस द्वारा किए गए सोहराबुदीन के एनकाऊंटर के खिलाफ। पुलिस कमिश्नर के ऑफिस के सामने। ह्यूमन राईट्सवाले ने पहल की है। मैं जानेवाली हूं। अब तो क्या नौकरी की भी तलवार सिर पर नहीं है। सस्पेंड हो ही गई हूं ना मैं अब! अब किसका डर?

अमिताभ : वैशू, मुझे क्या लगता है, अब इस निदर्शन में हिस्सा लेना क्या यह प्रायॅरिटी की बात है? कितने स्तरों पर हमें अभी लड़ना है। बेकार में पुलिसों से क्यों भिडती हो? और फिर यह सोहराबुधीन का प्रश्न महाराष्ट्र पुलिस का भी नहीं है। अगर अपराध किया है तो गुजरात पुलिस ने। पुलिस–विभाग राज्य शासन के अधीन होता है ना!

वैशाली : अमू, अरे, ऐसा क्यों कह रहा है? खैरलांजी में पुलिस का व्यवहार देखा है ना तूने? हत्याकांड जब शुरू हुआ, तब अनेक ने पुलिस से संपर्क किया, बावजूद इसके वे वहां गए नहीं, मृतकों का प्रोस्टमार्टम झटपट कर देना, वह करते समय बलात्कार की संभावना को ध्यान में न लेना, पूरा हत्याकांड जल्द–से–जल्द, फाइल बंद कैसे होगा इसकी तैयारी करना, इतना ही नहीं खैरलांजी के हत्याकांड के बाद महीने भर बाद जब इसकी चर्चा शुरू हुई तब पूरे राज्य में जो आंदोलन हुए उन्हें पूरी कठोरता के साथ दबा देना ये सारी बातें क्या दर्शाती हैं? खुद गृहमंत्री ने तब यह कहा था कि खैरलांजी हत्याकांड विरोधी आंदोलन नक्सलवादी है। पिछले कुछ समय से महाराष्ट्र पुलिस ने दलित विरोधी, अल्पसंख्यक विरोधी भूमिका कार्यान्वित करने में कहीं पर भी कोताही नहीं बरती है। फिर मालेगांव में हुए बम–विस्फोट की जांच–पड़ताल हो अथवा नांदेड़ में हुए बम–विस्फोट में हुई जांच–पड़ताल हो। यह कैसा टेक्नीकल मुद्दा तू निकाल रहा है कि, पुलिस विभाग के प्रदेशानुसार अलग–अलग होता है।

अमिताभ : सॉरी वैशू, गलती हो गई मेरी। परंतु हमारे घर में जो शुरू हुआ है, उससे मैं परेशान हो गया हूं। ऐसे समय औरों के बारे में थोड़ी सी इनसेन्सेटिव्हिटी आ जाती है। समझ ले तू मुझे।

वैशाली : समझ गई मैं। चल, थोड़ा घूम आते हैं तू फ्रैश हो जाएगा।

(अंधेरा)

दृश्य–तीन

(कॉलेज के गेट के सामने दस बाय दस का पंडाल। पीछे कपड़े का बैनर लगा है। उस

पर प्रा. वैशाली गजभिए पर हुए अन्याय का निवारण हो। एक दिवसीय उपोषण–ऐसा लिखा गया है। पंडाल में तीन स्त्री कार्यकर्ता उपोषण को बैठे हैं। वैशाली, अमिताभ, वैष्णवी सभी गोल आकार में बैठे हैं। सामने की दिशा में कॉलेज का वॉचमैन खड़ा है। छात्र इकट्ठे हो रहे हैं।)

वैष्णवी : मैडम, यह मेरी जिंदगी का सार्वजनिक पद्धति का पहला ही प्रसंग। मैं ऐसा कभी कर सकूंगी–ऐसा लगा ही नहीं था। परंतु इस कार्यक्रम की कल्पना मुझे आकाश ने दी और तब मैंने तय किया कि यहां चलेंगे ही। आकाश नहीं आया, कारण...

वैशाली : इतना भी क्या नहीं समझ सकती? तेरा आना ही बहुत आश्चर्य है मेरे लिए। तेरे पप्पा ने कैसे अनुमति दी तुझे यहां आने की?

वैष्णवी : उन्हें न बतलाते हुए ही आई हूं मैं यहां। परंतु हां, मम्मी को अलबत्ता पता है यह सब। उसका पूर्ण समर्थन है आपको। सचमुच मुझे आप एकदम अलग लगती हैं। पिछले दो घंटों से मैं यहां की चर्चा सुन रही हूं। एक अलग दुनिया मेरे सामने आई है। कितना भयंकर! मैं तो कांप गई हूं। यह सब सुनकर। सचमुच कितने दबे हुए होते हैं हम लोग अपनी छोटी सी दुनिया में? *(पॉज)* छाया जी कब आ रही हैं? मैं उन्हें देखना चाहती हूं। उनका 11वीं में स्थित पाठ मुझे बहुत अच्छा लगा था।

वैशाली : आएंगी वे इतने में ही। क्यों सुमन जी, छाया जी की मीटिंग कब खत्म होनेवाली है?

सुमन : साढ़े ग्यारह तक आऊंगी ऐसा कहा है उन्होंने। आएंगी ही पंद्रह मिनट में। वे आईं कि हम प्राचार्य से मिलेंगे।

उषाताई : हम क्यों मिलने जाएंगे? प्राचार्य को खुद यहां आना चाहिए। और हां, केवल प्राचार्य नहीं, संस्था के अध्यक्ष वे बापट या जो कोई हैं और वह सचिव कोई प्रमिला माली– उन्हें भी यहां आ जाना चाहिए। कितना भयंकर बोल रही थी वह माली मैडम वैशाली जी के बारे में। माफी ही मांगनी चाहिए उन्हें वैशाली जी से। तभी यह आंदोलन रुकेगा।

वैशाली : परंतु मुझे लगता है कि माफी का मुद्दा प्राथमिक बनाने की अपेक्षा संस्पेशन का आदेश पीछे लेने के मुद्दे को प्राथमिक बनाना चाहिए। क्यों सुमन जी?

सुमन : हां हां, छाया जी के आने के बाद यह सब हम लोग तय करेंगे। परंतु तेरे कॉलेज के कार्यकारी मंडल को अच्छा सबक मिल जाना चाहिए इस आंदोलन से। क्या समझते हैं वे खुद को?

(इतने में छाया जी आती हैं। उनके साथ एनजीओ में काम करनेवाली दो युवतियां भी हैं। सभी पीछे सरक जाते हैं। छाया जी खड़े–खड़े सब को संबोधित करने लगती हैं।)

छायाजी : सहेलियो, आज हमने यहां एक अन्यायपूर्ण घटना का निषेध करने के लिए उपोषण का आयोजन किया है। वैशाली हमारे आंदोलन की एक लड़ाकू कार्यकर्ता है। उस पर झूठे आरोप लगाकर उसे संस्पेंड करने के पीछे कॉलेज के प्रबंधकों की भगवी राजनीति कार्य कर रही है। वैशाली ने इस कॉलेज में पिछले 20 वर्षों से जी–जान से काम किया है। उस काम को इस रूप में लौटाना अत्यंत दुखद स्थिति है। जिस पद्धति से उन्हें सस्पेंड किया गया वह पूर्णतया गलत है। लड़ाकू स्त्री के चरित्र पर कीचड़ उछालकर उसे कमजोर करना यहां की प्रस्थापित व्यवस्था का पुराना ही खेल है। मैं इस कॉलेज की प्रबंध समिति का तीव्र शब्दों में धिक्कार करती हूं और कॉलेज प्रा. वैशाली गजभिये को तुरंत सेवा में स्वीकार कर लें–ऐसी मांग करती हूं। अन्यथा यह आंदोलन इसी रूप में चलता रहेगा। विधानसभा का वर्षा सत्र का अधिवेशन शुरू हुआ है। विधानसभा में इस प्रश्न को उपस्थित करने की व्यवस्था में कर रही हूं। इतना कहकर मैं अपने चार शब्द खत्म करती हूं। जय भीम जय भारत।

(पंडाल के आसपास अब छात्रों की भीड़ बढ़ रही है। एक दो पत्रकार भी आए हुए हैं। एक पत्रकार फोटो खिंचता है। अचानक प्राचार्य किर्लोस्कर वहां आते हैं। उनकी हाल चाल में किंचित झुंझलाइट है। सभी पर से वे नजर घुमाते हैं। छाया जी को नमस्कार करते हैं।

वैष्णवी को वहां देख उन्हें आश्चर्य लगा—ऐसा उनका चेहरा बतला रहा है। तू यहां वह धीरे से बोलते भी हैं। बैठे कि न बैठे ऐसी स्थिति में वे हैं। विचार करते हुए झुकी हुई अवस्था में वे खड़े हो जाते हैं।)

छाया जी : बैठिए सर, कुर्सी लीजिए।

किर्लोस्कर : *(हाथ हिलाते हुए)* नहीं, नहीं, कुर्सी नहीं चाहिए। बैठता हूं मैं। आप इतनी बड़ी वरिष्ठ लेखिका यहां नीचे बैठी हैं तो मैं कुर्सी पर नहीं बैठूंगा। मैं आपसे यह निवेदन करने आया हूं कि यह उपोषण आप पीछे ले लें। हम प्रा. वैशाली गजभिये की मांग पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे।

छाया : सहानुभूति? उपकार कर रहे हैं क्या सर आप उन पर? ऐसा कतई नहीं होगा। उन्हें फिर से काम पर लेना यह उनका न्यायपूर्ण हक है। उलटे उनकी जो बदनामी हुई है उसके लिए कॉलेज प्रबंधकों को उनसे माफी मांगनी होगी—ऐसी हमारी मांग है। अन्यथा यह आंदोलन चलते ही रहेगा।

किर्लोस्कर : मुझे लगता है कि यह प्रकरण *(इतने में उनका मोबाईल बजता है। एक्स्क्यूज मी कहते हुए वे पंडाल के बाहर आते हैं। फोन लेते हैं।)* हां, साहब जी, मैं वहीं पर हूं जी, हां साहब जी, कहता हूं। नहीं... नहीं। सर, अपने साहब जी...रखता हूं। *(माथे पर का पसीना पोंछते हुए फिर से पंडाल में आते हैं। चेहरे पर खिन्नता का भाव)*

किर्लोस्कर : प्रबंध समिति ने यह निर्णय लिया है कि यह प्रकरण कोर्ट में गया है। इस कारण कोर्ट का निर्णय आने तक वे कुछ भी नहीं कर सकते। हां, अगर प्रा. वैशाली गजभिए जी कोर्ट में से केस निकाल ले रही हों तो इस संदर्भ में कुछ सकारात्मक सोचा जा सकता है। निकलता हूं मैं। (ऐसा कहते हुए वे तेजी से निकल जाते हैं। उनके जाते ही खड़े हुए छात्र पंडाल के भीतर आकर बैठ जाते हैं।)

छाया : कॉलेज प्रबंधन समिति हाय हाय

सभी : हाय हाय

सुमन : प्रा. वैशाली गजभिए का अन्याय दूर होना ही चाहिए

सभी : होना ही चाहिए। होना ही चाहिए।

उषा : हमसे जो टकराएगा

सभी : मिट्टी में मिल जाएगा।

एक छात्र : *(अचानक उठकर)* वैशाली मैडम आगे बढो।

सभी : हम तुम्हारे साथ हैं।

छाया : भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी की

सभी : विजय हो

छाया : *(वैशाली को लक्ष्य कर)* वैशाली, आज कांदिवली में मेरा कार्यक्रम है। बारह बजे। चार बजे तक चलेगा। संभव हो तो मैं फिर से चक्कर लगाऊंगी। परंतु हमें यह आंदोलन यहां खत्म नहीं करना है। मैं भीम संदेश के संपादक से कल बात कर चुकी हूं। चार कॉलम का समाचार दिया है, उन्होंने। देखा है ना?

वैशाली : हां, सबेरे ही पढ़ा है मैंने। और यह क्या यहां लाया है ना सुमनताई ने वह पेपर।

छाया : ओके, तो मैं निकलती हूं। *(वह उठती हैं। उनके साथ आई दोनों युवतियां भी उठती हैं। वैशाली से हाथ मिलाती हैं। शुभकामनाएं देती हैं। और तीनों चली जाती हैं।)*
अंधेरा

दृश्य—चौथा

(ड्राईंगरूम। अमिताभ और वैशाली कोच पर बैठे हुए। अमिताभ वैशाली को कुछ पढ़कर बता रहा है। उन पर प्रकाशवृत्त)

अमिताभ : अब यह प्रसंग पढ़ता हूं। फायनल ड्राफ्ट हो गया है इस प्रसंग का। प्रसंग है प्रा. मुक्ता पवार और उनका जुनियर कलिग आशुतोष राजाध्यक्ष के बीच का।

वैशाली : अब तक अच्छा ही चल रहा है रे अमू। पुलिस के सामने की उस घटना को ठीक से खड़ा किया है तूने। और ढसाल की कविताओं की पंक्तियां तो कितनी ॲक्यूरेट बैठी हैं वहां। वह सब कुछ इतना यथार्थ रूप में आया है कि सहना मुश्किल। ठीक है पढ़ तू अब आगे का।

अमिताभ : *(पढ़ने लगता है)* जुहू बीच। रात के आठ–साढे आठ का समय। बीच लोगों से भरा हुआ, अलग–अलग प्रकार के फेरीवाले अपनी–अपनी आवाज में अपनी वस्तुओं का प्रदर्शन कर रहे हैं। मालिशवाले, गजरेवाले, कुल्फीवाले, चना जोर गरमवाले। समुद्र में ज्वार का जोर। तेजी से आनेवाली लहरों में पूरी तरह से भीगनेवाले कपल्स। परिवेश में एक उत्फुल्लता। बीच में ही पुलिस की एक वान सायरन देते हुए उस उत्फुल्लता को चीरते हुए निकल जाती है। कैमरा पूरा बीच कवर करता है। और प्रा. मुक्ता पवार और प्रा. आशुतोष राजाध्यक्ष पर स्थिर हो जाता है। वे निकट बैठे हुए। चिपक कर। आशुतोष कृत्रिम गुस्से से कहता है, मुक्ता मैडम जी कितनी देर लगा दी आपने। ठीक घंटे भर लटकाए रखा आपने हमें बीच पर। उन दोनों का रोमांस देखते हुए व्हायकेरिअस प्रेजर मिलाते बैठा हूं। यह कहते समय वह सामने बैठे एक जोड़े की ओर अंगुली निर्देश करता है। कैमरा उधर घूमता है। उस जोड़ी की लड़की ने बुर्का पहन रखा है। कैमरा उस जोड़ी पर से घूमते हुए पुनः इनकी ओर जाकर स्थिर हो जाता है। मुक्ता भी कृत्रिम गुस्से से कहती है, सॉरी, सॉरी, सॉरी, बौद्ध दर्शन के अनुसार तीन बार सॉरी कहा है मैंने हां। वह कान पकड़ती है। इतने में एक कुल्फीवाला भैया आता है। आशुतोष हाथ से ही उसे पांच मिनट रुकने के लिए कहता है। कुल्फीवाला थोड़ी दूरी पर जाकर रुकता है। आशुतोष कहता है, मैडम कुछ रहम करो हम पर कब से आस लगाए. .. मुक्ता उसे कुछ आगे बोलने ही नहीं देती। उसके होठों पर हाथ रखते हुए उसे अपने पास खिंच लेती है। इतनी देर से उनकी ओर देखनेवाला कुल्फीवाला आदत के अनुसार नजर दूसरी ओर घूमाता है। कुछ क्षण ऐसे ही चले जाते हैं। कैमरा उनकी ओर से फिर बुर्के में स्थित लड़की जोड़ी की ओर मूड़ता है। उनका रोमांस अब उत्कटता पर जा रहा है। कैमरा फिर से कुल्फी वाले की ओर, वह बेचारा फिर से मुक्ता आशुतोष की ओर जाता है। "स्साब दस मिनट हुए तबसे खड़ा हूं। आपने बोला था रुकने के लिए इसलिए रुका।" मुक्ता कहती है मुझे मलाई कुल्फी चाहिए। इस पर आशुतोष कुल्फी वाले को दो मलाई कुल्फी देना, दस का आर्डर देता है। कुल्फी वाला दोनों को कुल्फी देता है। पैसे लेता है। निकल जाता है। अब कैमरा पुनः दोनों पर।

(अमिताभ हाथ का कागज टेबल पर रख देता है। अमिताभ और वैशाली दोनों स्टेज के दूसरी ओर जाते हैं। वहां प्रकाश–वृत्त। मानो समुंदर के किनारे का परदा। अमिताभ बदन पर की कमीज उतारकर रख देता है। अब वह टी–शर्ट पर। में है। अमिताभ और वैशाली अब क्रमशः आशुतोष और मुक्ता का बेअरिंग लेते हैं।)

आशुतोष : मैडम, अब हमें करना क्या है?

मुक्ता : क्या करेंगे मतलब? यह देख आशू, हमने कोई गलत काम तो नहीं किया है। तू ओर मैं दोनों मैच्योर हैं। प्रेम करना कोई अपराध तो है नहीं। वह हम दोनों का व्यक्तिगत प्रश्न है।

आशुतोष : पर मुझे डर लगता है।

मुक्ता : घबरा नहीं रे! मैं क्या कहती हूं सुन। कल ही उस सदावर्ते वकील से मिल लेते हैं।

आशुतोष : मैडम, हम दोनों के खिलाफ प्रमाण हैं प्रबंधन समिति के पास।

मुक्ता : यह तुझसे किसने कहा? और आशू, अब यह मैडम कहना बंद कर–अब। काफी समय बीत गया है कॉलेज खत्म हुए।

आशुतोष : ओके मैं... आय मीन मुक्ता, मैं ऐसे कहूं क्या? मैं अब तुझे मुक्ता कहूंगा।

मुक्ता : मुक्ता

आशुतोष : हां, मतलब मैडम में का मॅ ओर मुक्ता में का क्ता। मिलकर हुआ मॅक्ता। परसो तो बड़ा मजा आया, स्टाफरूम में तू विमुख बैठी थी। मोबाइल पर एक जबरदस्त जोक आया। और कहां बैठा हूं इसे भूलकर मैं जोर से मुक्ता देख कहते हुए पीछे मुड़ा। तो तू जा चुकी थी। और शेष पूरा स्टाफ मैंने तुझे मुक्ता कहा इसलिए आश्चर्यचकित हुआ था। वे कराले सर तो कहते रहे हंसते–हंसते कि अजी, आपकी मुक्ता मैडम तो गई भी क्लास पर। और फिर सब हंसने लगे। मैं तो इतना लज्जित हुआ कि सीधे बाहर ही निकल गया वहां से।

मुक्ता : अच्छा वह रहने दे तेरा। पहले यह बता कि यह सबूत किसने भरा है तेरे दिमाग में।

आशुतोष : *(पॉज लेते हुए)* मुक्ता, वह नाईक नहीं है क्या? कहते हैं कि उसने हमें देखा था, महाबलेश्वर में। वह भी आया था वहां जब हम गए थे तभी। हमारे सामने आया नहीं वह। परंतु कॉलेज में सब ओर बोंब की उसने।

मुक्ता : अच्छा तो ऐसा है। इसीलिए देख रही हूं मैं पिछले कई दिनों से, वह मेरी ओर विचित्र नजरों से देखते रहता है। इसके अलावा और कुछ?

आशुतोष : मुक्ता, तुझे क्या लगता है? हम दोनों सभी ओर मुक्त रूप से घूम रहे हैं, होटल, थिएटर, नाटक, आर्ट गैलरियां, एक्झिबिशन्स, कौन सी जगह ऐसी है जहां हम दोनों इकट्ठे जाने से कतराते रहे हैं? इसके अलावा मैं तो तेरी मीटिंग्ज, सार्वजनिक कार्यक्रमों में भी आता ही हूं हर बार। तो फिर अब तक किसी ने भी नहीं देखा होगा हमें इकट्ठे?

मुक्ता : देखें तो देखें। क्या हम चोरियां करते रहे हैं कि लूटमार करते रहे हैं हम?

आशुतोष : मुक्ता, ऐसे कैसे बोल रही हो? एक मैरिड स्त्री हो तुम। कोई समझ लेगा हमें?

मुक्ता : अरे, स्वतंत्र मनुष्य हैं ना रे हम? हमारा शरीर क्या किसी की मिल्कियत बनती है शादी के बाद?

(अब अमिताभ, वैशाली पुनः अपने मूल रुप में ड्राईंगरूम की दिशा में निकलते हैं। कोच पर बैठते हैं।)

वैशाली : अमू, तुझे बीच में ही रोकती हूं। मेरे सामने एक प्रश्न है। यह तू मुक्ता और आशुतोष में जो रिश्ता बतला रहा है ना, वह हमारे यहां पॉसिबल है क्या? मुझे तो यह सब अनरिअलिस्टिक लगता है। एक बात ध्यान से सुल लो, मुक्ता कितनी भी साहसी स्त्री हों तो भी वह हमारे समाज में जीती है। उसका पति भी। आंबेडकर के समाज में पति इतना लिबरल होता है? बतला दे मुझे तू एक भी उदाहरण। पुणे–मुंबई की ओर हो तो भी।

अमिताभ : फिल्म है यह वैशू। जो है वह तो बतला ही रहे हैं ना हम। परंतु जहां हमें जाना है एक परिपक्व स्त्री–पुरुष रिश्ते की ओर, उसका संकेत अगर कर दिया जाए तो क्या बिगड़ा?

वैशाली : देखो भला अमू, आंबेडकर का पूरा समाज तेरे विरोध में जाएगा– इस मुद्दे पर। अमिताभ बनसोडे की क्रांति की कल्पना कितनी उथली होती है ऐसा कहेंगे फिल्म देखने के बाद। अनैतिक ही ठहराएंगे वे इस फिल्म को।

अमिताभ : ठहराने दे। होने दो टीका–टिप्पणी। इन दिनों हमारे लोग काफी सेन्सेटिव हो गए हैं। और एक बात ध्यान में रख, जब कोई भी समाज अपने धर्म और जाति की अस्मिता को लेकर अतिसंवेदनशील होने लगता है, तब उसका पहला शिकार स्त्री हो होती है। एक व्यक्ति के रुप में उसके अस्तित्व को नकारा जाता है। उसके चरित्र, मुद्दे सार्वजनिक बनने लगते हैं। इस दृष्टि से हिन्दुओं से हम कहां अलग हैं? इस सोकाल्ड नैतिकता के गुब्बारे को जरा आलपिन चुभो ही देनी चाहिए।

वैशाली : ठीक है, पढ़ आगे।

(वह आगे पढ़ने लगता है। धीरे–धीरे अंधेरा)

दृश्य–पांचवा

(ऊंचे स्तर का एक होटल। अमिताभ, वैशाली, वैष्णवी और आकाश खाना खाने इकट्ठे हुए

हैं। हंसना–खिलखिलाना शुरू है। चारों एकदम लाईट मूड में। परिवेश में एक लाईव्हलीनेस। चारों के सम्मुख बीयर के गिलास हैं।)

अमिताभ : *(सिप लेते हुए हाथ से गिलास नीचे रखता है।)* सो आकाश, इज द मोस्ट प्लेंझट डे ऑफ यूवर लाइफ, इजन्ट इट?

आकाश : येस सर! आपको बतलाता हूं कि मेरी तो पूरी ही फट गई थी इस पूरे प्रकरण से। सोचा गई अब नौकरी और छोकरी भी!

वैष्णवी : *(लजाते हुए)* यह क्या रे आकाश! मैंने कभी तुम्हें नकार दिया था।

आकाश : कुछ मत कहिए आप! आपके मन में भी अनेकानेक शंकाएं आई थीं ना! कहूं क्या सर से, सब? और इसके पिताश्री महाभयंकर व्यक्ति। उन्होंने तो...

वैष्णवी : जाने दे ना रे आकाश, खत्म हो गया ना वह सब? क्यों फिर से उसी की चर्चा। मजे से सेलिब्रेट करने आए हैं ना हम!

वैशाली : बाय द वे, अच्छा हुआ भला आपका आज का एंगेजमेंट का कार्यक्रम। कितनी सुंदर दिख रही थी वैष्णवी तू आज। कुछ भी कह आकाश, तुझे पत्नी अलबत्ता बहुत अच्छी मिली है।

वैष्णवी : उसमें क्या है मैडम। सब कुछ अचानक तय हो गया ना। बहुत गड़बड़ हुई। पप्पा ने कहा अब और अधिक देर नहीं। शादी भी कर लो, कह रहे हैं अगले महीने में तुरंत।

वैशाली : बराबर है उनका। सचमुच अब तुम्हें और अधिक देरी नहीं करनी चाहिए। अब तो पट ब्याह, यही ठीक है।

अमिताभ : परंतु मुझे एक उत्सुकता है। वैष्णवी के पप्पा ने एकदम यू टर्न कैसे लिया? और इतनी तेजी से एंगेजमेंट भी कर दिया?

आकाश : उसका क्या है सर, कारण एकदम सीधा–सादा सा है। हमारे प्राचार्य किर्लोस्कर और वैष्णवी के पिताश्री एक ही बैठकवाले। उनकी ओर से इनके पिताश्री को प्रत्येक समाचार मिल रहा था। परसो मैडम को मैनेजमेंट ने फिर से जॉईन होने का लेटर हाथ में दिया और उधर पप्पा को यह खबर मिल गई। इसके अलावा सर, मैडम और मेरे बारे में जो कुछ बोला जा रहा था, वह साफ झूठ है यह तो किर्लोस्कर द्वारा इनके पिताश्री तक पहुंच ही गया होगा ना। उसके सिवा क्या इसका दुष्ट बाप इतनी आसानी से थोड़े ही अनुमति देता?

वैष्णवी : आकाश, अब मेरे पिताजी को गालियां देना बंद कर। अब वे तेरे ससुर हो गए हैं। कुछ रिसपेक्ट वगैरह देनेवाला है कि नहीं।

अमिताभ : यह अलबत्ता एकदम ठीक है। भला वैष्णवी तुम्हारा। और यह क्या तुम्हारा तो बहुत स्लो चल रहा है। तेरा गिलास खतम ही नहीं हो रहा है काफी देर से। पीना है तो कैसे पीना, तुझसे कह रहा हूं वैष्णवी।

वैशाली : अमु, उसे उसके तरीके से पीने दो। बेकार में अपनी थिएरियां यहां मत ले आ।

अमिताभ : ओके मॅक्ता?

(वैशाली जोर–जोर से हंसने लगती है। आकाश और वैष्णवी दोनों एक दूसरे की ओर ऐसे देखते हैं, जैसे उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया है।)

वैशाली : अरे आकाश, तुझे पता है ना, कि इन दिनों अमिताभ स्क्रिप्ट लिख रहा है, फिल्म के लिए। खैरलांजी पर। पूरी तरह से खो गया है उसमें वह। मुझ पर अनैतिक आचरण का आरोप लगाकर कॉलेज ने मुझे निकाल बाहर किया और मैंने इसके खिलाफ लड़ने का तय किया, इसे भी अमिताभ ने जोड़ लिया है उसमें। थोड़ा बहुत तफसील बदलकर। परंतु महत्वपूर्ण तफसील दिया यह कि यहां हम दोनों में कुछ भी वैसा नहीं है, परंतु फिल्म में इसके ठीक उल्टा किया गया है। वह है मुक्ता पवार और वह आशुतोष राजाध्यक्ष और उनमें रिश्ता है सीधे–सीधे। कॉलेज में उसे मैडम कहनेवाला आशुतोष एकांत में उसे कई बार मैडम ही कहता। इस पर वह गुस्से से कहती है कि यह मैडम–मैडम क्या कहते जा रहे हो मुझे। तो उस पर आशुतोष कहता है कि आज से मैं तुझे मॅक्ता कहूंगा। *(सभी हंसते हैं।)* अमिताभ

को जब से यह सुझा है तब से वह मुझे मॅक्ता ही कह रहा है।

अमिताभ : पर कुछ भी बोलो आकाश, मॅक्ता इन दिनों एकदम फॉर्म में है। आज ही उसका साक्षात्कार लेने के लिए लोकवार्ता की प्रतिनिधि घर पर आई थी। अगले रविवार के संस्करण में मैडम जी का जबरदस्त साक्षात्कार अनेवाला है तस्वीर के साथ।

वैष्णवी : मतलब कॉलेज की घटना के संदर्भ में?

वैशाली : कॉलेज की घटना को लेकर उन्होंने सीधे कुछ पूछा नहीं। कुल आंबेडकर जी के आंदोलन के संबंध में, आंदोलन में स्त्री का स्थान, निर्णय प्रक्रिया में उसकी सहभागिता, दलित बहुजन स्त्रीवाद ऐसे काफी मुद्दे हैं। साक्षात्कार लेनेवाली काफी सेन्सेटिव लगी मुझे। काफी पढ़कर आई थी, अच्छी चर्चा हुई ।

आकाश : पर मुझे एक बात बताइए मैडम, ऐसी क्या जादू की छड़ी घूमी कि कॉलेज ने आपको सम्मान से वापिस बुला लिया गया?

अमिताभ : तुझे पता है ना आकाश, रंजीत चाचा कितना चाहते हैं इसे?

वैष्णवी : कौन ये रंजीत चाचा?

वैशाली : आंबेडकरी आंदोलन के सीनियर कार्यकर्ता हैं वे। रंजीत संवेदनशील सांसद हैं इन दिनों राज्यसभा में। मुझे बेटी की तरह मानते हैं वे। अंततः यह प्रकरण उन तक पहुंचा। और उन्होंने मुझे बुलावा भेजा। गुस्सा ही कर रहे थे मुझ पर कि यहां तक नौबत आने पर भी क्यों नहीं बतलाया मुझे। फिर उन्होंने ही पूछताछ शुरू की और घूम गई जादू की छड़ी। अंततः कितना भी कुछ कहो, रंजीत चाचा और बापट जी की पार्टी तो एक ही है ना? भले ही उनकी वैचारिकता में अंतर हो।

अमिताभ : दूसरा गिलास भरना नहीं है क्या वैष्णवी?

वैशाली : नहीं, अब खाने का ही ऑर्डर देंगे, काफी समय हो चुका है।

अमिताभ : यह खाना आने तक हमारा तीसरा और वैष्णवी का दूसरा राऊंड होने में क्या दिक्कत है?

वैशाली : नहीं, नहीं अब बस्स। अमू, अरे कल मुझे लेक्चर्स देकर उस निदर्शन में भी जाना है ना, उस सोहराबुद्दीन के।

अमिताभ : अरे हां, भूल ही गया था मैं। सुनो आकाश, अब तुम्हारे मैडम का जिगर और भी बढ़ गया है। दस हाथियों की ताकत आ गई है उसमें। सीधे पुलिस कमीश्नर के कार्यालय के सामने ही निदर्शन हैं ये। क्यों वैष्णवी, जाएगी तू?

आकाश : नहीं, नहीं सर, अब इतने में कोई कॉम्प्लीकेशन नहीं चाहिए हमें। शादी होने तक। इसके पप्पा को पसंद नहीं आएगा यह।

अमिताभ : अरे, मैं मजाक कर रहा था बाबा। परसो यह नहीं आई थी क्या उपोषण करने। मतलब अब यह भी कार्यकर्ता ही बनी हुई हैं, है ना! और ऐसी–तैसी नहीं, अच्छी लड़ाकू। कुछ भी बोलो, आज के युग में औरतें लड़ाकू बन रही हैं और पुरुष अलबत्ता पीछे हट रहे हैं। क्यों आकाश, ठीक बोल रहा हूं ना मैं। इतने में अमिताभ का मोबाइल बज उठता है। वैशाली से धीमी आवाज में बोलता है आनंद जी का फोन है। *(फोन पर बोल रहा है।)* कहिए, कहिए.... नहीं... मैं बाहर हूं जी... पर बोलिए आप... यहां बोल सकते हैं आप... अच्छा जी... पर मैंने तो सब कुछ बदला है... व्वा... व्वा *(चेहरे पर खुशी फैल जाती है।)* कब आ रहे हैं? हां चलेगा... कल.... ठीक... खाना खाने ही आइए ना शाम को? चर्चा करेंगे... ठीक ठीक.... हां...हां मजे में है वह.... और उसके कॉलेज का प्रकरण भी मिट गया है। उसी को सेलिब्रेट करने आए हैं बाहर... कहता हूं उसे आपका संदेश... हां... हां गुडनाईट... थैंक्यू (वैशाली को लक्ष्य कर) वैशू, कहां हो.... मेरी स्क्रिप्ट आनंद जी को बहुत ही पसंद आ गई। कह रहे थे कि उनके फ्रेमवर्क से भी बहुत अच्छा हुआ है यह। कल आ रहे हैं वे अपने यहां। मैंने उनसे कहा, करेंगे और भी बहस। तो उन्होंने कहा–अब बहस की.... अब सीधे आगे की बातें...

वैशाली : चलो, तो हो गए आप अब पटकथाकार। कॉंग्रेंट्स् अमू वैष्णवी और आकाश : अभिनंदन सर।

हार्टली कॉग्रेच्युलेशन्स।

आकाश : व्वा। आज का दिन क्या अफलातून है? मझे तो यह सब कुछ किसी हिंदी फिल्म की तरह लग रहा है। अंत कैसा मीठा–मीठा, कामदीवाला। वैष्णवी और मेरी एंगेजमेंट, मैडम की मैनेजमेंट के खिलाफ जीत, और अब सर जी की फिल्म आनेवाली है जल्दी ही। खुशी का यह त्रिवेणी संगम ही है मानो। नहीं मैडम, अब आप कुछ बोलेंगी नहीं। अब तो आपको पीना ही पड़ेगा। और वैष्णवी तू भी ले। तुझे जितनी संभव हो उतनी ही।

(सभी गिलास ऊंचा उठाते हैं। जोर से चीअर्स करते हैं अंधेरा।)

दृश्य–छठा

(ड्राईंगरूम, अमिताभ रिमोट से खेलने बैठा है। लाईट मूड में। बेगम अख्तर की ठुमरी चल रही है। किचन से कॉफी लेकर वैशाली आती है।)

वैशाली : अमू, अब झट से कॉफी ले और सो जा जल्दी। मैं भी आज काफी थक गई हूं। कब बिछौने पर पसर जाऊंगी–ऐसा हो गया है मुझे।

अमिताभ : सचमुच काफी परेशानी हो गई आज आपकी। सबेरे का कॉलेज, दोपहर का निदर्शन और शाम की पार्टी ! खैर, एनीवे खाना बेहतरीन बना था आज। आनंद जी तो कितनी आत्मीयता से खाए। कुछ भी बोल, खाना बनाने में तुम्हारा कोई सानी नहीं रखता। *(उसे आलिंगन में लेता है।)*

वैशाली : (उससे छूटने की कोशिश करते हुए।) अमू, मुझे एक बात बता। बेहतरीन खाना बनानेवाली औरत को बया के पक्षी की उपमा क्यों दी जाती है? मुझे पता है तू विषय बदल रही है। पर बतला ही दूं तुम्हें। बया का घोंसला होता है न सुंदर, अनुशासनबद्ध। शायद उसमें से आया होगा यह शब्द। *(कुछ तो याद करते हुए)* अरे हां वह गाना ही है क्या... खैर, यह आनंद जी अलबत्ता, हमारी अपेक्षा से भी भिन्न ब्राह्मण निकला भला।

वैशाली : हां, रे। आश्चर्य ही लगता है मुझे, कितनी अच्छी लगी उन्हें तुम्हारी स्क्रिप्ट। बहुत ओपन माइंडेड निकले वे। बेकार में हमलोग औरों के प्रति प्रेज्युडिसेस में अंदाज लगाते हैं।

अमिताभ : मुझे भी नहीं लगा था, इतनी सहजता से होगा यह सब कुछ। मुझे तो रह रहकर आश्चर्य हो रहा है कि आनंद जी जैसा चालाक आदमी कैसे फंस गया हमारी जाल में?

वैशाली : एक मिनट अमू.... *(पॉज)* वे हमारी जाल में अटके हैं ना निश्चिंत? मुझे तो उल्टे यह लग रहा है कि हम ही उनकी जाल में फंस गए हैं?

अमिताभ : मतलब, क्या कहना है तुझे?

वैशाली : *(थोड़ी देर चुप रहती है। विचारमग्न। वह भी कुछ–कुछ बेचैन होता है।)* अमू, वैसा ही हुआ है शायद। हम ही फंस गए हैं शायद उसकी जाल में। एक शब्द का भी फर्क न करते हुए तेरी स्क्रिप्ट स्वीकारने को वे कैसे तैयार हुए? स्क्रिप्ट पर तो वे कुछ भी नहीं बोले। तू कितनी बार पूछता रहा उन्हें, कैसी हुई है स्क्रिप्ट। तो वे सिर्फ हंसते रहे।.... इतना सहज था क्या उनका हंसना? मुझे तो उनकी उस हंसी में छद्म की गंध आ रही है। देख ना, उनकी अब तक की यात्रा हमारे सामने ही है। इतनी सहजता से कैसे बदलेंगे वे अपनी भूमिका?

(अमिताभ का चेहरा हक्का–बक्का हो रहा है।)

देख अमू, अब मैं समझ गई रे! हमारी स्क्रिप्ट उन्हें इतनी क्यों पसंद आ गई है?

अमिताभ : क्यों पसंद आई?

वैशाली : पहले मुझे यह बता कि हमें उनका फ्रेमवर्क क्यों नहीं पसंद आया था?

अमिताभ : क्योंकि उनके फ्रेमवर्क में खैरलांजी का हत्याकांड जिस अमानवीय जाति व्यवस्था के दबाव से घटित होता है, वही प्रेक्षकों तक पहुंच नहीं रहा था। प्रेक्षक थिएटर से बाहर निकलते समय क्या लेकर निकल रहा था तो खैरलांजी का हत्याकांड अनैतिक संबंधों के कारण हुआ। इतना सीधा–सरल समीकरण रह जाता प्रेक्षक के दिमाग में। और इसी पर हमारा

आक्षेप था।

वैशाली : ठीक यही ना! सही कहा है तूने। अब तेरा फ्रेमवर्क देखने के बाद प्रेक्षक अपने दिमाग में क्या लेकर बाहर निकलनेवाला है? एक ओर तो तूने मुक्ता और आशुतोष का रिश्ता इस तरह प्रस्तुत किया है और उसकी प्रशंसा की है और फिल्म है खैरलांजी पर। इससे हमारी मूल प्रस्तुति को ही छेदा जा रहा है ऐसा नहीं लगता है तुझे?

अमिताभ : नहीं, ऐसा है ही नहीं। यह कोई अनैतिकता का समर्थन नहीं। यहां स्त्री—पुरुष संबंधों के प्रति खुली और स्पष्ट भूमिका है। अनैतिकता का संबंध चोरी छिंपी बातों से होता है।

वैशाली : परंतु एक बात ध्यान में रख अमू, तू खैरलांजी पर सिनेमा कर रहा था, वहां स्त्री—पुरुष रिश्तों से संबंधित भूमिका उपस्थित करने का कोई कारण ही नहीं था।

अमिताभ : परंतु स्त्री—पुरुष रिश्ता, उनमें स्थित लैंगिकता और कुल समाज व्यवस्था उसमें घटित खैरलांजी जैसा हत्याकांड, ऐसे अलग—अलग हिस्से होते हैं क्या वैशू? खैरलांजी में सुरेखा भोतमांगे के चरित्र की बदनामी की जा रही थी और यहां कॉलेज में तेरे चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा था—यह क्या दर्शाता है? और फिर एक ओर सुरेखा भोतमांगे की निर्मम हत्या तो दूसरी ओर इधर तुम्हारे अन्यायपूर्ण संस्पेशन को उचित ठहराना—यह क्या है? यहां तक कि 'भीम संदेश' ने भी इस हत्याकांड के बाद—पंद्रह दिनों तक उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया था। उस काल के 'भीम संदेश' के अंक निकालकर देख और खोल उसका कोई भी पन्ना, वहां केवल धर्मदीक्षा का सुवर्ण महोत्सव ही दिखाई देगा। मतलब हमारी मीडिया को भी यही लगाता है कि अनैतिकता से ही यह सब कुछ घटित हुआ है—ऐसा।

वैशाली : तू कह रहा है यह सच ही है। परंतु अमू, खैरलांजी का यथार्थ प्रस्तुत करते समय यह ऐसा बतलाना मुझे तो थिगल जैसा लगता है। अथवा आज की भाषा में पोस्टमॉडर्न कोलाज जैसा...

अमिताभ : फुले—आंबेडकर से प्रेरित साहित्य में क्या लिखा जाना चाहिए और वह कैसे लिखा जाना चाहिए, इसके भी सांचे बनाकर रखनेवाले हैं क्या हम? और फिर प्रस्थापित साहित्य की परिधि से जब ऐसी टीका की जाती है कि दलित साहित्य आवर्त्त में फंस गया तो भयंकर गुस्सा आता है हमें उसे पढ़कर।

वैशाली : यह देख अमू, इस समय तो यह चित्र है चाहे वह हमें पसंद आए या न आए—परंतु प्रियंका भोतमांगे की दुनिया और प्रा. मुक्ता पवार की दुनिया भिन्न ही हैं। भिन्न—भिन्न सांस्कृतिक द्वीप में जीते हैं हम, इसको दर्ज करनेवाले हो कि नहीं?

अमिताभ : तू जो कह रही है, कुछ—कुछ वैसा ही मुझे भी लगता है। परंतु बावजूद इसके वह इतना सरल भी नहीं है।

वैशाली : सरल तो कुछ भी नहीं होता। पर यह देख, आनंद जी के संदर्भ में हम यह कह रहे थे कि जब खैरलांजी में घटित सच्ची घटनाओं में इतनी ताकत है तो उसी पर फिल्म बननी चाहिए। उसे अन्य किसी भी प्रकार की बैसाखियों की जरूरत नहीं है। तो फिर हम ही फिल्म में मुक्ता—आशुतोष के संबंध के बारे में क्यों बता रहे हैं? यह अपने पूर्वनियोजित हेतु के लिए सचाई को ट्विस्ट करना नहीं है क्या? और इसमें से मूल घटना की भीषणता आऊट ऑफ फोकस नहीं हो रही है क्या?

अमिताभ : ओह....! तेरा कहना सौ प्रतिशत सही है... यह... यह... यह...

वैशाली : रुक, रुक सृजनशील रचना में यथार्थ रचाया हुआ ही होता है। स्व—तंत्र होता है, ऐसा हम मानने लगे कि फिर अपने सुविधानुसार ही सब कुछ क्या रचा जा सकता है! और हम.... मतलब तू वही करने गया। मेरा संघर्ष फिल्म में तू ले आया परंतु उसके साथ मुक्ता—आशुतोष का रिश्ता शरीर स्तर पर लाकर पटकथाकार के नाते तू स्त्री—पुरुष संबंध अपने विचार से वहां सुविधानुसार ले आया। तो फिर आनंद जी इससे अलग और क्या करना चाहते थे? वे अपनी भगवी राजनीति के लिए यह कह रहे थे और तू अपनी भूमिका पर दृढ़ रहने से

और अपने हेतु किसी भी प्रकार का संदेह न रहने से, तू वह करते गया। एक बात ध्यान में रख। आनंद जी पर संदेह करना बहुत आसान है। वे तो उस सांचे के हैं ही आखिर। पर हम? हम किस सांचे में अटक गए? कैसे अटके? उनका ब्राह्मण होना पर्यात है एक अर्थ में, उनका उद्देश्य शंकास्पद सिद्ध करने के लिए। पर हम तो बौद्ध, आंबेडकरवादी! हम कुछ भी कर सकते हैं! इस समाज में जन्म ले लिया कि बस्स! हमारा जीना–रहना, आचरण मानो बाय डिफॉल्ट प्रगतिशील, मुक्तिवादी। मूल में यह त्रासदी केवल तेरी–मेरी नहीं है। समकालीन आंबेडकरवादी आंदोलन की राजनीति की, और उसके भी आगे जाकर मैं तो कहूंगी कि आंबेडकरवादी साहित्य की भी यही द्विधाग्रस्त स्थिति हो गई है। प्रस्थापितों पर प्रहार करते–करते उन्हें ही हम अपना आदर्श मान उनके ही जैसा आचरण कब करने लगते हैं–इसका हमें पता ही नहीं चलता। उससे होता है क्या, तो यह तेरी फिल्म जैसा।

अमिताभ : अब मुझे ठीक से समझ में आ गया कि खैरलांजी जैसी सत्य घटना को साहित्य–कृति में अभिव्यक्त करना अत्यंत कठिन काम है। और इस कठोर घटना पर उपाय बतलाना अथवा निर्णय देना तो दूर ही रहा। परंतु किसी लेखक द्वारा इस संबंध में सुस्पष्ट ऐसा अन्वयार्थ करने का दावा करना तो वह भी एक प्रकार की वंचना ही है। खुद से की हुई वंचना! क्या बतलाएंगे आप? जो घटित हुआ वह नृंशस हत्याकांड! जैसे का वैसे? अथवा खैरलांजी हत्याकांड करनेवाली उस पूरी भीड़ को फांसी पर लटकाया जा रहा है–ऐसा? कि पूरे गांव को दंड के रूप में बुनियादी सुविधाओं से कुछ काल तक वंचित रखने का निर्णय...मतलब उनका पानी रोकना, बिजली गायब करना आदि? सारे के सारे सरल सीधे उपाय। परंतु इनप्रॅक्टिकेबल! इस प्रश्न को समग्रता में पकड़ना यही सबसे बड़ी चुनौती है। और यह केवल लेखक के सम्मुख की चुनौती नहीं है, तो परिवर्तन के लिए काम करने को उत्सुक, परिवर्तन का स्वर देखनेवाले प्रत्येक के सम्मुख यह चुनौती है। एक विकराल प्रश्नचिह्न खड़ा किया है खैरलांजी ने।

वैशाली : मुझे भी ऐसा ही लगता है, अमू कि मेरा संघर्ष सुरेखा जैसा ही है। परंतु हम दोनों के हिस्से में जो–जो आया उसकी तुलना हो ही नहीं सकतीं। देखो ना, इस रंजीत चाचा ने एक फोन किया और पूरी समस्या ही खत्म हो गई। परंतु खैरलांजी का क्या? किसी के फोन से रुक सकेगा क्या यह सब? वहां सुरेखा भोतमांगे लड़ते–लड़ते मृत्यु के सम्मुख गई। और हम! हम तो व्यवस्था से ही समझौता करके जी रहे हैं। संस्पेशन के विरोध में कोर्ट में जाने का मुद्दा कितनी सहजता से किनारे हो गया–हमारी ओर से? अमू, सच में खैरलांजी सुरेखा भोतमांगे का ही है। और हमारा? हमारा है... बिल्कुल खैरलांजी! (दीर्घ पॉज) एक बात बतला मुझे अब, इसमें से रास्ता कैसे निकालेंगे? आनंद जी तो अगली तैयारी में लग गए होंगे जोरों से।

अमिताभ : वैशु, मैंने अब तय किया है, आनंद जी को फायनली कहूंगा कि मेरी स्क्रिप्ट मुझे वापिस कर दीजिए। आपको करनी है ना फिल्म तो करें आप अपनी पद्धति से। परंतु मैं अलबत्ता आपके साथ इस प्रोजेक्ट में नहीं रहूंगा।

वैशाली : फिर करेगा क्या तू इस स्क्रिप्ट का?

अमिताभ : मैं उसे पूर्णतः नकार रहा हूं। *(ऐसा कहते–कहते स्क्रिप्ट उठाता है और उसके टुकड़े–टुकड़े कर नजदीक के डस्टबीन में डालता है।)*

वैशाली : अरे, अरे अमू, क्या कर रहा है यह तू? क्यों फाड़ डाला यह सब! उपन्यास के लिए इसका उपयोग कर सकता था ना तू? कि अब कुछ भी नहीं लिखनेवाला है तू इस पर?

अमिताभ : *(व्यंग्य से)* अब मैं एक डाक्यूमेंटरी करने पर विचार कर रहा हूं।

वैशाली : *(उसके पीठ पर मारते हुए)* अमू...! यू आर टू मच हं। एनीवे चल उठ। अब समय मत डाल। आनंद जी को फोन कर अभी इसी समय।

(वह लैंडलाईन की ओर जाता है। फोन लगता है। वैशाली उसकी ओर जाती है। अंधेरा)

•

अश्वेत कवयित्री

28 अगस्त 1952 में जन्मी अश्वेत लेखिका रीटा डोव को काफी कम उम्र में ही संयुक्त राज्य अमेरिका की राष्ट्रीय कवि और लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस कविता का सलाहकार नियुक्त किया गया। रीटा डोव पुलित्जर पुरस्कार प्राप्त करने वाली दूसरी अश्वेत कवयित्री हैं। रीटा डोव के लेखन में प्रगतिवाद और खूबसूरती के साथ इतिहास और राजनीतिक समझ भी बखूबी दिखती हैं। इसके अलावा कला के दूसरे माध्यमों के बारे में भी रीटा डोव ने खूब लिखा है।

रीटा डोव

प्रस्थान

जैसे ही आपकी आशा कुम्भलाने लगती है
आपको वीजा दिया जाता है
फिल्मों की तरह एक दरवाजा सड़क की ओर
खुल जाता है,
आपके सिवाय यह सड़क स्वच्छ लोगों की
बिल्लियों की है
आप जा रहे हैं आपको वीजा प्रदान किया गया है
'व्यवस्थापन' एक चिड़चिड़ा शब्द है
तुम्हारे पीछे की खिड़कियां बंद कर दी गई हैं
उनकी करतूत कर आप गुलाबी हो रहे हैं
हर सुबह, यहां धूसर हैं, दरवाजे
से लेकर टैक्सी तक इंतजार, यह सूटकेस
दुनिया में सबसे दुखद चीज़।
खैर, दुनिया खुल रही है और अब चूंकि
धूल की परत से ढके हुए आकाश का शरमाना शुरू हो
रहा है
जैसे तुम शर्माते थे तुम्हारी मां बताया करती थी
क्या इसे करने के लिए इस जीवन में एक औरत होना
होगा?

तारों का घर

बजाने दो भेड़ियों को सीटियां
और दुकानदारों को करने दो पूछताछ
चलते रहो, हालांकि तुम्हारे घुटनों का रंग उड़ गया है
दो लाल कड़क सेबों की तरह
चलते रहो अग्रणी सदस्य की तरह
भिखारी का ठंडा कप अतीत हो गया है
गुमटी का अतीत
तुरही की
ओडिसी और दिल के टूटने की कहानियां
जब तक, कोने में मोड़ आए, तुम खड़े हो
घूरते हुए घात लगाकर हमला करते
जहां कैनेरी से खिड़की से ऐसी रोशनी आ रही है
मानो हज़ारों सुनहरे नर्गिस फूल खिल उठे हों।

अनुवादक – विपिन चौधरी

हस्तक्षेप

हेमलता महिश्वर की कविता

पहेली

सुनी तो होगी न
सबकी तरह
आपने भी
पहेली
वही पहेली
जो सुनी थी
बचपन में मैंने
आपने भी
जिसने था बूझा
उसने भी
बचपन में अपने
सुन बूझ रखी थी
जाने बीते
बचपन कितने
पहेली वही थी
पहुंची कहीं से कहीं थीं

पहेली वही
तीतर के दो आगे तीतर
तीतर के दो पीछे तीतर
आगे तीतर
पीछे तीतर
बोलो कितने तीतर

बूझना पहेली
क्या होता आसान है?
बूझो तो
आदिवासी के आगे आदिवासी
आदिवासी के पीछे आदिवासी
आगे आदिवासी

पीछे आदिवासी
किसको बचाते
बोलो मारे गए
कितने आदिवासी
कितनी सरकारें
कितनी तरह की सरकारें
करती रही थीं और हैं
जतन
कि बच जाए आदिवासी
पर
आदिवासी तो
आदिवासी था
आदिवासी है
जंगल में था
जंगल में है

जो उसका था
अब सरकार का है
और सरकार है कि
मुख्यधारा में होने के ही नही
मुख्यधारा की निर्माता होने के बाद भी
लंगड़ी रही
अंधी भी
इसलिए
संतुलन बिठाने
जंगल की तरफ बढ़कर
जंगली हो गई
कि तब से आदिवासी
सभ्यता से मुख्यधारा की
लदा–फदा था
कभी टाटा, कि एस्सार
कि वेदांता
सारे के सारों की सभ्यता से
जंगल अटा पड़ा था
इस सभ्यता को सहेजने
आगे आदिवासी
पीछे आदिवासी
यहां से जड़ उखाड़े
तो कहां जाकर
जड़ गाड़े आदिवासी

बूझो बूझो
केन्द्र से राज्य तक
बस्तर से असम तक
झारखंड, ओडिशा, आंध्र, महाराष्ट्र
कैसे असम नहीं
सम है सरकार
ऑडिट की नहीं दरकार
पण्डो, बैगा, मडिया
बोडो हो कि कोरवा हो
आदिवासी का
जिसमें दखल हो
एसपीओ आदिवासी
सलवा जुडूम में आदिवासी
सलवा जुडूम का आदिवासी
नक्सली आदिवासी
उल्फा आदिवासी
माओ आदिवासी

मरता आदिवासी
मरने से किसको बचाता आदिवासी
आगे आदिवासी
पीछे आदिवासी
बोलो कितने बचे आदिवासी

आगे आदिवासी
पीछे आदिवासी
जंगल में है आदिवासी
तो समझो
मौसम को सुरक्षित रखने की मदद हासिल है
मौसम सुरक्षित
तो समझो
बचे रहेंगे पेड़ धरती पर
कि सहला जाएगी अपने नर्म हाथों से हवा
गुनगुना ताप दे जाएगी
कि बचा रहेगा थोड़ा पानी
उनकी वजह से हममें भी
पृथ्वी सुरक्षित थी कि
रहता था आदिवासी
आदिवासी है कि बिखरता रहा
और धरती का आंचल सिमटता रहा
उर्वर धरती खोखली हो गई
विकास की शर्त पर
विनाश को हुए
कितने गर्त आदिवासी
बोलो अरे बूझो तो
अब तक कितने बचे आदिवासी

कविताएं

सुवंश ठाकुर

अपना हाथ जगन्नाथ

सबकुछ दिया है तुम्हें
पिता परमेश्वर ने
दी है भीम जैसी भुजाएं
पांव जैसे अंगद के
विस्तृत आकाश जैसा चौड़ी छाती
रवि शशि सी उज्जवल आंखें
विशाल मस्तक बुद्धि का भंडार
झरनों की तरह अनवरत
बहने वाला
संवेदनाओं से लबालब दिल
फिर क्यों कोसते हो खुद को
कहकर लाचार अनाथ और अभागा

रोक सकते हो दिशाएं हवा की
भर सकते हो कुबेर का भंडार
अपने घर में
चाहो तो ला सकते हो
उठाकर गिरि को
पवन–पुत्र हनुमान की तरह
पी सकते हो समन्दर को
अगस्त्य की तरह,
फिर क्यों दूसरे की अर्जित संपदा को
चुराने में लग गए हो
कैद रहते हो असलहों में
दिखाते हो भय इस समाज को,
न पा सकोगे किंचित् हवा–महल से
धैर्य शौर्य साहस और धर्म की धरा से
चलते हुए राह ईमानदारी की
अन्याय और अनीति से दूर रहकर
लगाना होगा अंकुश बुद्धि पर विवेक का
धन पर धर्म और मद पर सुमति का,
बैठकर निठल्ला लूटने की ताक में
होता नहीं कुछ
अगर होता है तो समझो अनर्थकारी
होता है खाली दिमाग
घर शैतान का
करके परिश्रम देख लो
बदल जाएगा लेख भी
तुम्हारे हाथों से विधाता का,
फिर तो सारे हाथ समाज के
उठेंगे साथ–साथ
अपना हाथ जगन्नाथ....

छालविहीन सूखा पेड़

विज्ञाननगर कोटा शहर
मुख्य सड़क के किनारे
मोटी तना वाला सूखा पेड़
अंश मात्र भी जिन्दा नहीं,
उसके ठीक सटे
ठेला पर छतरी ताने
शंभु रस भंडार बेच रहा है
गन्ने निचोड़कर
अदरक पुदीना और काला नमक मिलाकर
जैसे नेताजी स्वाद बदलते हैं
पार्टियां बदल–बदलकर,
लागों की भीड़
खासकर कोचिंग में पढ़नेवाले
छात्र–छात्राओं की
रस पीने के लिए
मैंने भी पीया
बड़ा स्वादिष्ट है,
पास ही खड़ा एक क्षीणकाय मानव
टकटकी लगाकर देख रहा है
रस पीनेवालों को,
मेरे तो दिमाग चकराने लगे
उस सूखे फटे तना वाला
पेड़ को देखकर

जिसकी खाल उधेड़ ली गई और
दाल गोभी के पकौड़े छानने वाले बूढ़े ने
कबके झोंक दिया हैं चूल्हे में
अंग्रेजों के बरसते कोड़े
अब भी है भारत में,
निचोड़े जाते गन्ने
धधकते रहते चूल्हे
कड़कते तेल में पकाए जाते पकौड़े
और आठ–आठ आंसू रो रहा है
वह छालविहीन सूखा पेड़,
डेकर और टिटहरी
अब भी बैठती हैं रात में
इस पेड़ की सूखी डालियों पर
उल्लुओं के संग
भूखी नंगी जनता की तरह,
शायद यह पेड़
हरा–भरा हो जाए
और दिन की तपती धूप में
छांह मिल जाए
मनरेगा और अन्नकलश योजना से,
कवि जी!
आप तो कविता लिखने लगे
इसका कोई असर होगा क्या
अपने देश के हाल पर?

प्रकृति–प्रकोप

दिन का थका–मांदा गरीब
अपनी झोंपड़ी में
बेहोश था निद्रा की गोद में
सहसा चौंककर उठा
छा गया दिलोदिमाग पर
खौफ का मंजर
जैसा कि रसूल मियां ने
न सुना था न देखा था
पचपन की उम्र तक,
हू–हू आवाज करती आई आंधी
आशियाना उजड़ गए
आ गए आसमान के नीचे
बच्चे बूढ़े जवान स्त्री सभी
दब गए मलबे में
कितने तो गुजर गए
कितने तड़पने लगे,
कहीं आवाज भयंकर
दरख्तों के टूटने की
जैसे कटकटाकर
काल चबा रहा हड्डी
कहीं मलबे में दबे लोगों की चीत्कार
कहीं खोपड़ी सी श्मशान में
उड़ रहे टीन–छप्पर,
कहीं मवेशियों के रंभाने की आर्त्तनाद
ये है तूफान की दास्तां
शायद प्रलय, महाप्रलय का हिस्सा,
बिखर गए कितने गरीबों के सपने
ताश के पत्तों की तरह,
ठनका ठनके!
कितने मासूम और बूढ़े गुजर गए
महल वाले सोते रहे खिड़की–किवाड़ बंद कर,
छीन लिया तूफान ने
बच्चों के मुंह का निवाला
घर–बार छीना
कर लिया जीवन–हरण,
सरकार पूरी करने लगी
अपनी औपचारिकता
महल के झरोखे से,
आखिर तूफान ने हिलाया
डराया और बर्बाद किया
लाचार बेवसों को ही,
किससे मांगे न्याय
सरकार से समाज से या ईश्वर से!
आंखें बंद हैं उनकी
कान बहरे हैं उनके
आखिर सारे दर्द
गरीब ही क्यों सहते हैं?

तिजोरी

अकूत सम्पत्ति अनाप–सनाप कमाए गए धन
अपने पेट में छिपा रखी है तिजोरी,
छिपकर रहती है
मुंह पर ताला लगा रखी है,
भय खाती है
ताला खुलेगा तो
पोल खुल जाएगी,
खाली–खाली बिचका हुआ
रहेगा उसका मुंह
बिना दांत का बुड्ढा
सच–सच
बयान करने के लिए
अपनी काली करतूतों के लिए
अपने मुखमंडल पर कालिख
पुतवाने के लिए।

कविताएं

भारत सिंह

थोड़ा पहले और थोड़ा बाद

दोस्तो,
ये मेरे और मेरे समय का रोजनामचा है
हो सकता है इस पर आपको शब्दशः यकीं न हो,
पर इसका ताना–बाना मैंने ऐसे बुना है कि भ्रम हो
खूब गाढ़ा!

खूब गाढ़ा भ्रम, किसी के भरोसे से भी गाढ़ा
युवाओं के रक्त से भी गाढ़ा!

सीखिए कि कैसे बिछा जाता है भावी सम्राट की
अगवानी में,
उसे दी जाती हैं इंद्र, बलि और मर्यादा पुरुषोत्तम की
उपमाएं....

यही नहीं, मैंने तो खींच लिया था उसकी संभावित
योजनाओं का खाका
जिसे कुछ बेवकूफ देते हैं महज चापलूसी का नाम!

मैंने सुझाए थे उसे भावी दुश्मनों और दोस्तों के नाम
(हालांकि मैं भी पहले उसे दुश्मनी का भरम देता था)
और खुद को कर लिया था नारेबाजों की कतार में
सबसे आगे!

मैंने ऐतिहासिक बताया था उसके अश्वमेध रथ को
(और कुछ बेवकूफ कहते हैं कि राजा महज संहार
को जन्मते हैं)
मेरे इस यू–टर्न को मेरी चालाकी नहीं बस आज की
सड़क की बनावट समझा जाए
कि रास्ता हमें ले जाएगा, वहीं हम पहुंच सकेंगे!

पर मेरा ऐसा हश्र किसी ने सोचा न था
मुझे लेटना था सेज पर, हाय! पायदान बन गया...

मेरी पहचान आपको चौंका सकती है, डरा सकती है,
इसलिए मैं, मैं हूं–आप हूं, व्यक्ति हूं–युक्ति हूं, सूत्र
हूं–मल–मूत्र हूं, क्रांति हूं–भ्रांति हूं
मंत्र हूं–तंत्र हूं, गठन हूं–संगठन हूं, स्वप्न हूं–दुःस्वप्न
हूं–
एक शोषक, मायावी, चालाक और आदमखोर दुनिया
का....
(एक मर्सिया)

हम विदा हुए
इस वादे पर कि
मिलेंगे अबकी सर्दियों में!
जब दुनिया के दुःख थोड़ा ठंडे पड़ चुके होंगे
सिर पर सूरज, जमीन पर रेत थक चुकी होगी
समंदर और सूखते शरीरों से उठती नमकीन भाप कम हो जाएगी
हवाओं में जलाने की तासीर कम रह जाएगी
दुनिया में थोड़ी और जगह बन जाएगी

जब खेतों में पीली पड़ रही होगी सरसों,
तब वो उतरेगी मेरे भीतर गुनगुनी धूप के साथ
और मैं हवा से हल्का हो–धुंध बनकर लिपट लूंगा उससे!

हिंदी की किरांती

कबिरा खड़ा बजार में, देखे क्या क्या हो रिया
जो टीबी से मर रिया, वो शहीद बन घूम रिया

दूजा दुकान सजा रिया तो पहिला उससे जल रिया
भौं–भौं–भौं– भौं–क्यांऊ–क्याऊं–क्याऊं–क्याऊं, कुछ पल्ले नी पड़ रिया

एक दिया जो बुझ रिया, वो खूब तेज फड़फड़ा रिया
तेल उसका सूख रिया, वो सूखी बत्ती चूस रिया

जो–जो शोषक हो रिया, वोही किरांती में छप रिया
पंडत चुटिया कटवा कर, फूं–फां–फूं–फां कर रिया

मजदूर निकाला जा रिया–यिहां–विहां फेंका जा रिया
मजूरी दबाई जा रही, मुर्गा चबाया जा रिया

आज की फूं–फा के दम पर, निया बायोडाटा बन रिया
देखो–देखो पाखंडी, कैसा खूब है तन रिया
हवा में कुश्ती हो रयी, ये–उसको पटक रिया
हाय अल्ला, में भी तमाशाई बन गिया

लाल–नीली चड्डी गिर रयी, लंगोट खुश है हो रिया
मौका–चौका देख के, पूरा खेले फिक्स हो रिया
कबिरा खड़ा बजार में, देखे क्या क्या हो रिया....

दुख

दरअसल
दुख में भीगना
होता है जैसे
सर्दियों की बारिश में भीग जाती है बिल्ली या
चिड़िया का बच्चा
जो लाता है जिंदगी में नमक और पानी
और
कराता है खुद के होने का असल अहसास

नौकरी–नाकरी

मैं
मिट्टी होता रहा आधी जिंदगी
मिट्टी के एक घरौंदे के लिए
और धूल होती रही बाकी उम्र
उस घरौंदे से मिट्टी बुहारने में।

•

कविताएं

इरेन्द्र बबुअवा

बच्चों के लिए

मुहब्बत के लुटेरों ने
मुहब्बत के बाजार में
खूब लूटा मुहब्बत को

जब मुहब्बत ने पूछा–
इतनी मुहब्बत क्या करोगे?

लुटेरों ने कहा–
घर सजाएंगे बच्चों के लिए!

डायन

पानी में तैरती
मछली की तरह
उठते–गिरते
हवा के सहारे हाथों से दिशाएं पकड़े
एक–एक पांव बढ़ाते
बोली सुग्गे की तरह बोलते
और नट–खट बंदर जैसे
अपने एक महीने की
उम्र जीने वाले बच्चे के बारे में
सोचती है एक मां
और सोचते–सोचते
अपनी उसी पड़ोसन के
बच्चे में खो जाती है
जिसके बारे में पास–पड़ोस का कहना है
वह एक बड़ी डायन है
उसी ने उसके बच्चे को खाया है

लेकिन एक मां
पता नहीं इस बात को
कितना सच मानती है
कि उसके आंगन में
जब पड़ोसन का बच्चा आता है
तो उसमें अपने बच्चे का रूप देखती है

दुनिया में एक मां ही होती है ऐसी
जो हित तो हित
दुश्मन कहे जाने वाले के बच्चे से भी
कर सकती है, प्यार
भर–भर अंकवार!

रोप

पसीने से तर–ब–तर
आम का पौध रोप रहे हैं काका
ऊपर बादल नहीं
नदी कोसों दूर
रोप रहे खुरपी से
माटी कोड़

काका कहेंगे
पौध जब बन जाएगा एक पेड़
कभी उसके नीच सुस्ताएंगे
हमने सींचा है इसे अपने पसीने से

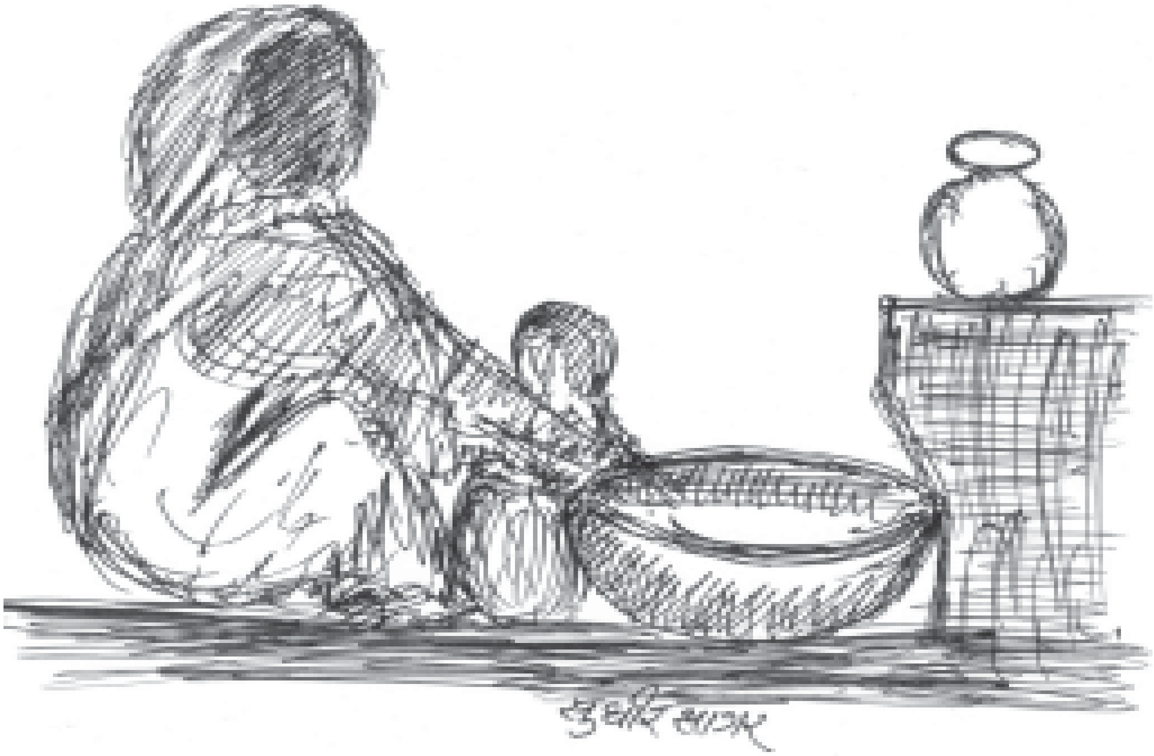

और तब उनकी सारी थकान
बिला जाएगी
मन–ही–मन हहरेंगे

तब–तब,
किसे पता होगा
आज काका सुस्ता रहे हैं
अपनी जिन्दगी में खूब!

शून्य

शून्य
तू क्या है
पता है अंकों को

तू किसी के पीछे लग जाए...
तू किसी के आगे लग जाए तो...

मगर तू क्या नहीं है
अगर किसी अंक के आगे–पीछे
न लगे तो
यही पता नहीं होता
अंकों को!

पता

वह लड़की
दीवाल पर टंगा एक चित्र
जब भी देखती खामोश ही सही
मुस्कुरा देती
वह लड़की
जो बोलते–सुनते, रहने लगी खामोश
बन गई एक दिन
चित्र देखते–दखते एक चित्र
और टंग गई दीवाल पर

किसे पता वह लड़की
न तो खामोश रहने आई थी
न ही दीवाल पर टंगने
वह आई थी अपने ढेर सारे
सपने संजोने और बचाने

किसे पता
वह लड़की
अपनी पहली तनख्वाह लेकर
क्यों चली गई आखिर

दीवाल पर टंगा
एक खामोश चित्र
और एक खामोश मुस्कुराहट
छोड़ कर!

चार–छह

बस की भीड़ में
पैसा गिरा क्या
चार–छह लोग देखने लगे
एक खूबसूरत लड़की
खूबसूरत कपड़े में
गुजरी सामने से क्या
चार–छह लोग देखने लगे
एक औरत सब्जी बेच रही थी
पीकर आया पति
बातों–बातों में पीटने लगा
चार–छह लोग देखने लगे
मेरी भी बीवी पर
चार–छह लोगों की
नजरे हैं
हां उस दिन भी जब
चार–छह बम फटा
चार–छह लोग मरे
चार–छह लोग हॉस्पिटल
पहुंचाए गए
चार–छह लोगों ने फटते बम देखा
फेंकने वाले के बारे में भी
चार–छह लोग बता रहे थे
चार–छह लोग कुछ–कुछ
सब कुछ जानते हैं
बम फटने के
चार–छह महीने बाद
बैग पकड़ एक औरत
आते–जाते लोगों से
बारहखम्बा के फुटपाथ पर खड़ी कहती है
''बैग दिखा, बैग–बैग, क्या है इसमें''
और उसे झटककर चल देते हैं सब
अब यह सब, वह सब,
वह सब, यह सब
किसको याद
चार–छह महीने बाद!

जा रहा मैं

थपेड़े खाते जा रहा
ठोकरों से दोस्ती हो गई है
शरीर सुन्न करने की कार्रवाई में
पर मैं किसी शून्य में नहीं
एहसास नहीं किसी भी दुःख–दर्द का
आंखें सूखी पड़ी हैं
और दूर–दूर, बहुत दूर
कोई उम्मीद नहीं हरियाली की

पर चिन्तित न होओ तुम
कि ऐसे में इस तरह मैं कहां जा रहा
चिन्तित न होओ तुम
कि जा रहा लौटकर आने के लिए ही!

मौसम

अगर जी रहे हो
देखते ही होओगे
मौसम का हर रूप–रंग
कभी धूप, कभी छांव
कभी ठंडी, कभी गर्मी
घनघोर घटाएं बाहर–भीतर
कभी फिस–फिस तो कभी
झमाझम बारिश
कभी पतझड़, कभी बहार

कभी देखते होओगे घाव और मौसम के बीच
किसी क्षण के ठहराव को मुकाम में बदलते नहीं
बल्कि बनते हुए मुकाम

जी रहे हो अगर
फिर क्या बताना, कोई रहस्य सुलझाना तुमसे!

•

स्त्री–दुनिया

मानसिकता बदलने की जरूरत

रंजना जायसवाल

पिछले वर्ष जब भक्त–जन मिट्टी की मां दुर्गा की आरती उतार रहे थे, एक बेटा अपनी मां को जिंदा जला रहा था। कुछ समय पूर्व भी एक बेटे ने अपनी मां की सुपारी देकर बुरी मौत दिलवाई। पहले उसने उसकी जीभ कटवाई, फिर बाकी अंग। कारण मां अय्याशी के लिए धन नहीं दे रही थी। जिस जीभ से मना किया, उसे कटवाकर ही वह संतुष्ट हुआ। भीख मांगती बूढ़ी औरतों से पूछो, तो बेटों के अत्याचार की अनगिनत कहानियां सुनने को मिल जाती हैं। बचपन में मां से भी एक कहानी सुनी थी, जिसमें बेटे ने प्रेमिका को खुश करने के लिए मां का कलेजा ही निकाल लिया था। परशुराम ने भी तो पिता के कहने पर अपनी मां का सिर काट दिया था।

रवना (सुप्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट्ट की विदुषी पत्नी) की जीभ भी उसके पुत्र ने पिता की आज्ञा से काट ली थी, जिससे उसकी मौत हो गई। 'ना आना इस देश लाडो' की अम्मा जी भी बौरा गई हैं। जबर्दस्त सदमा लगा है। उन्हें जिस पर नाज़ था, उसी ने षड्यंत्र कर ना केवल उनकी सत्ता हथिया ली, बल्कि उन्हें घसीटकर घर से बाहर कर दिया। यह वही अम्मा जी हैं, जिन्होंने अपने गांव वीरपुर में कन्या जन्म का निषेध कर रखा था। कन्याएं जन्म लेते ही मार दी जाती थीं। यह नियम उन्होंने अपने घर पर भी लागू किया था। अपनी बेटी के परित्याग व पोतियों को मृत्युदंड देने में भी वे एक पल की देरी नहीं करतीं थी। वे स्त्री विरोध में पूरी तरह से पुरूष मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती थी। समय के साथ वे थोड़ा बदलती है, पर उनके रोपे विष–बीज अब मजबूत वृक्ष बन चुके हैं। अब वे भी उसी शिंकजे में हैं। इस आपातकाल में उनके साथ वे ही स्त्रियां हैं, जिन पर उन्होंने अनगिनत अत्याचार किए थे। दो बहुएं, पोते की गर्भवती बहू, दो पोतियां, एक बच्ची के साथ सिर्फ दो पुरूष हैं–एक पालित पुत्र, दूसरा पोता। इस कुनबे को उनकी बहुत चिंता है। वे उन्हें ठीक करना चाहते हैं। अम्मा जी का कमज़ोर रूप वे सहन नहीं कर पा रहे हैं। बहू सलाह देती है कि वे वर्षों पहले छोड़ चुके वीरपुर चलें, तो शायद अम्मा जी इस सदमे से बाहर आ जाएं।

पर वीरपुर बदल चुका है। अम्मा जी की गद्दी पर एक ऐसा दबंग आदमी काबिज हो चुका है, जो घोर पतित है और सारे बुरे कामों के साथ वह लड़कियों की खरीद–फरोख्त करता है। उसके गुंडे दूसरे गांवों से लड़कियों को अगवा करके लाते हैं, जिनकी वीरपुर में बोली लगती है। वीरपुर में लड़कियों के जन्म न लेने–देने की परंपरा के कारण लड़कियां नहीं हैं, इसलिए वीरपुर के मर्द अपना घर बसाने के लिए लड़कियां खरीदते हैं। दूसरे गांव के लोग वीरपुर में लड़की ब्याहना नहीं चाहते, क्योंकि वहां औरत सिर्फ मादा हैं। ऐसे वातावरण में पांच जवान स्त्रियों के साथ अम्मा जी का वीरपुर आना, वह भी बौरही रूप में समस्याओं को जन्म दे रहा है। गांव के मर्द अम्मा जी का शासन भूल चुके हैं। उन्हें नए शासक का समर्थन मिला हुआ है। अम्मा जी के घर की पांचों स्त्रियों की इज्जत खतरे में है। गांव के मंदिर का पुजारी उन्हें मंदिर में छिपाए हुए है, पर कब तक। उनके बाहर निकलने का रास्ता भी बंद है और राशन–पानी भी। कब तक वे हथियार नहीं डालेंगी? निश्चित रूप से धारावाहिक मां दुर्गा का चमत्कार दिखाएगा, जिससे अम्मा जी फिर से शक्तिरूपा होकर अपने परिवार की रक्षा करेगी।

पर मैं सिर्फ उस भविष्य की ओर संकेत करना चाहती हूं, जो निरंतर तेज़ी से घटते कन्या–अनुपात के कारण होने की प्रतीक्षा में है। यदि इसी तरह कन्या–भ्रूणों को मारा जाता रहा, तो क्या कल यह देश वीरपुर में तब्दील नहीं हो जाएगा? निश्चित रूप से तब पुरूषों को स्त्री उपलब्ध नहीं होगी और जो शक्तिशाली व संपन्न होगा, वही स्त्री को प्राप्त करेगा। ज्यादातर परिवारों में कई पुरूष एक स्त्री के साथ रहने को विवश होंगे। एक अराजक स्थिति उत्पन्न होगी। स्त्री मात्र मादा होगी, वस्तु होगी, स्त्री के लिए युद्ध होंगे, छीना–झपटी और बलात्कार में वृद्धि होगी। समाज से नैतिकता पूरी तरह विलुप्त हो जाएगी। अभी समय है, हम चेत सकते हैं, संभल सकते हैं। कचरे, जंगल व बियाबानों में मरने के

लिए फेंकी गई बच्चियों को देखकर यही लगता है कि आज भी बेटियों से लोगों को कितनी नफ़रत है। दुर्गा नवमी के दिन अधिकतर हिंदू परिवारों में नौ कन्याओं की पूजा–अर्चना की परंपरा है। गोरखपुर में एक नर्सिंग होम के पास से पांच माह की बच्ची का शव मिला है। बच्ची का शव अखबार में लिपटा हुआ था। ऐसी ना जाने कितनी बच्चियां इस तिथि को मिली होंगी।

समाज की मानसिकता इक्कीसवीं सदी में भी बेटियों के प्रति बदली नहीं है। वे बोझ हैं, पराया धन हैं। उसके पैदा होने से धरती धंस जाती है। आज भी स्त्रियां विशेषकर अशिक्षित पुत्र–मोह से ग्रस्त हैं। पुत्र के लिए वे कई व्रत रखती हैं। बेटी के लिए एक भी नहीं। बेटे को दूध–मलाई खिलाती हैं। बेटी को रूखी–सूखी की धारणा व्याप्त है कि– 'बेटियां तो रूखी–सूखी खाकर भी ताड़ की तरह बढ़ जाती हैं। बेटे का करियर महत्वपूर्ण मानती हैं, इसलिए उसके लिए दहेज जुटाना ही पर्याप्त है उनके लिए। मान्यता है कि लड़की तो जैसे चाहे, पढ़ ही लेगी। फिर उसकी शिक्षा भी, तो बस उसे विवाह लायक बनाने के लिए है, करियर के लिए नहीं। कल पति नहीं चाहेगा, तो सब कुछ छोड़ना पड़ेगा, इसलिए ज्यादा खर्च करना फिजूल है। हालांकि शिक्षित व शहरी स्त्रियों की सोच अब काफी बदल चुकी है। मेरा एक शिक्षित मित्र चार बेटियों का पिता बनकर परेशान है। मां के पोते की जिद ने उसे मजबूर कर दिया था। मां तो रही नहीं और अब वह बच्चियों की शिक्षा और विवाह के खर्चे के बारे में सोच–सोचकर बीमार रहने लगा है। मैंने उसे बच्चियों की शादी की चिंता छोड़कर उन्हें अच्छी तरह शिक्षित करने का सुझाव दिया है। पर महंगी होती जा रही शिक्षा को देखकर मुझे भी चिंता हो रही है। आज के कठिन व महंगे समय में, जहां किसी एक बच्चे की परवरिश ही मुश्किल है, वहां बेटे की प्रतीक्षा में बेटियों की लाइन लगाना या फिर भ्रूण का लिंग पता कर उसे नष्ट करवा देना या पैदा हो जाने के बाद मरने के लिए छोड़ देना या फिर बेच देना, कहां की बुद्धिमानी है? पर यह घटित हो रहा है, जो चिंता का विषय है। समाज की मानसिकता जब तक नहीं बदलेगी, लिंग–भेद जब तक नहीं मिटेगा तब तक इस समस्या का समाधान भी नहीं हो सकेगा। यह प्रश्न उठ सकता है कि जब इतनी कन्याएं पैदा हो रही हैं कि उन्हें मारने की जरूरत पड़ रही है, तो फिर बेटों के सापेक्ष बेटियों का अनुपात घट कैसे रहा है? पर यह हो रहा है, क्योंकि कुछ लोगों का यह भी कहना है कि गरीबी इसका मुख्य कारण है। बढ़ती जाती दहेज की मांग के कारण माता–पिता बेटियों के साथ नाइंसाफी कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री मायावती ने इसी कारण से 15 जनवरी, 2001 से 'महामाया गरीब बालिका आशीर्वाद योजना' शुरू की, जिसमें गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों में बालिका का जन्म होने पर उसके लिए एकमुश्त धनराशि 17 वर्ष के लिए राष्ट्रीय बैंक में सावधि जमा के रूप में जमा कर दी जाती है। 18 वर्ष की आयु तक बालिका के अविवाहित रहने की स्थिति में उक्त जमा धनराशि से लगभग एक लाख रूपये की धनराशि उपलब्ध होगी। अब तक 4,25,719 बालिकाएं इस योजना से लाभान्वित हो चुकी हैं। यह सरकारी आंकड़ा है, इसका लाभ कितनों को, कितना और कैसे मिलता है, यह अलग शोध का विषय है।

निश्चित रूप से समाज की मानसिकता बदले बिना बेटियों को सम्मान नहीं मिलेगा, न ही उनकी हत्याएं रूकेंगी। शिक्षा का प्रसार, जागरण–अभियान, मीडिया के प्रयास, सरकारी कोशिशें और सख्त कानून की सबकी जरूरत पड़ेगी। मीडिया को लड़कियों के प्रति होने वाली हिंसा, यौन–शोषण, बलात्कार की खबरों के साथ उन खबरों को भी छापने में दिलचस्पी दिखानी चाहिए, जिसमें बेटियों ने कीर्तिमान स्थापित किए हैं। उसे उनकी उपलब्धियों, सफलताओं का अधिकतम प्रचार–प्रसार करना चाहिए। ऐसा करने का सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। लोग बेटियों की सुरक्षा के लिए चिंतित नहीं रहेंगे। बेटियां आत्मविश्वास से भरेंगी और आत्मनिर्भर बनेंगी। जल्द ही वह दिन आने वाला है, जब बेटी के जन्म का स्वागत होगा और लिंग–भेद हमेशा के लिए समाज से मिट जाएगा। पिछले साल 3 अक्टूबर को पुरूषों के लिए सुरक्षित मानी जाने वाली भारतीय सेना में पहली बार एक महिला जवान को शामिल किया गया है। अब तक महिलाओं को सशस्त्र बलों में सिर्फ गैर लड़ाकू इकाईयों में ही अधिकारी के तौर पर शामिल किए जाने की अनुमति थी। लेकिन दो बच्चों की मां ये 37 वर्षीय सैपर शांति तिग्गा ने शारीरिक परीक्षण में अपने पुरूष समकक्षों को पीछे छोड़ दिया। उसे 161 रेलवे इंजीनियर रेजिमेंट ऑफ टेरिटोरियल आर्मी में शामिल किया गया है। कहने का तात्पर्य यह कि धीरे–धीरे बेटियां हर क्षेत्र पर काबिज हो रही हैं। वे न कमजोर हैं, न अक्षम, न पुरूषों से किसी बात में कम, इसलिए समाज को उनके प्रति अपनी सोच को बदल देनी चाहिए। 'ना आना लाडो' की अम्मा जी भी अपनी सोच बदलने को बाध्य हो रही हैं। सरकार भी 'बेटी बचाओ' अभियान को युद्ध–स्तर पर लागू करने के लिए कृतसंकल्प है, तो देर किस बात की है? आइए हम सब भी इस पवित्र यज्ञ में शामिल हों और 'पुत्र बिना गति नहीं' की मानसिकता को बदलें। ●

स्त्री–दुनिया

बलात्कार की कितनी सीमाएं!

प्रियंका सोनकर

बलात्कार, बलात्कार, बलात्कार–सड़कों, शहरों, गावों, घरों, गलियों, चौराहों पर आज बलात्कार की भी बाढ़ आ गई है। ऐसा नहीं है कि बलात्कार पहले नहीं होते थे किन्तु तब और आज में स्थिति बहुत ही पेचीदा हो गई है। इसका दर्शन क्या है, इसकी सीमाएं क्या हैं–आज इस पर सोचना बहुत ज्यादा जरूरी हो गया है। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' यह धरती वीरों के भोग करने के लिए है–यह उक्ति आज के परिदृश्य में चरितार्थ होती हुई दिखाई दे रही है। उदारीकरण, बाजारीकरण के इस अंध े दौर में इतने निर्मम, अमानुषिक बलात्कार–शर्म आती है इस धरती के उन पुरूषों पर। जिस तरीके से बलात्कार की घटनाएं और बलात्कारियों की मंशाएं बढ़ी हैं, सोचकर दिल दहल जाता है–कांप उठता है। आखिर ऐसा कौन सा समाज या कौन सा तहखाना है, जहां स्त्रियां सुरक्षित और बेखौफ़ रह सकें। बलात्कारी पुरूषों को अपनी ताकत आजमाने के लिए एकमात्र स्त्री का शरीर मिला है। वासना, लिप्सा, गुस्सा, अहंकार, प्रतिशोध, जो भी है, सबका शिकार स्त्री और उसका शरीर है।

बलात्कार की परम्परा तभी से चली आ रही है, जबसे पुरूषप्रधान समाज शक्तिशाली बना, अर्थात् जबसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था सत्ता में आई। इस पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में स्त्री को अनेक रूपों में हिंसा का सामना करना पड़ता है। हिंसा का रूप चाहे साम्प्रदायिक हो, सामाजिक हो या फिर राजनैतिक अथवा घरेलू, हिंसा के शिकार के केन्द्र में हमेशा स्त्री ही रही है। स्त्री का बलात्कार एक ऐसी ही हिंसा है। बलात्कार में यौन–संसर्ग के साथ–साथ हिंसा भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। बल–पूर्वक यौन–संसर्ग, वह चाहे पुरूष द्वारा पत्नी का ही क्यों न बलात्कार हो– लेकिन वह की श्रेणी में नहीं गिना जाता। स्त्री को भोगने के लिए पुरूष को खुली छूट है। यहां बस विवाह का एक जामा पहना दिया गया है।

बलात्कार निस्संदेह रूप से वासना का एक खेल है, लेकिन उसका एक वर्ग चरित्र भी होता है। जो महिलाएं पुरूष के मन में वासना पैदा करने में सबसे अधिक समर्थ दिखाई देती हैं, उनके साथ बलात्कार नहीं होता। उदाहरण के तौर पर फिल्मी हस्तियां, अभिनेत्रियां, मॉडल आदि। इन्हें खास–तरह की एक वर्ग सुरक्षा मिली हुई है। ज्यादातर बलात्कार उन स्त्रियों के साथ होता है, जो असुरक्षित हैं। घर की औरतों के साथ, नौकरानियों के साथ, छात्राओं के साथ, अब तो छोटी–छोटी बच्चियों के साथ भी। बलात्कार का सुन्दरता से कोई लेना–देना नहीं है। देखा जाए तो बलात्कारी का पैमाना सुन्दरता नहीं होता। उसकी कसौटी होती है कि कहां से आसानी से हमला किया जा सकता है। इसलिए ज्यादातर बलात्कार झुग्गी–झोंपड़ियों में, गांवों के विषमतापूर्ण माहौल में, पुलिस हवालात में या फौजियों द्वारा उपद्रवग्रस्त इलाकों में होते हैं। बदायूं की लड़कियों का पुलिस हवालात में, सोनी सोरी का फौजियों द्वारा, कश्मीरी लड़कियों और अफ्सपा द्वारा असमी युवतियों का बलात्कार इसके पुख्ता साक्ष्य हैं। स्त्री को डायन करार कर नंगा घुमाया जा रहा है। कभी ससुर, तो कभी पिता, तो कभी अपने ही पति, जो शादी के फेरे लेते वक्त सात जनम तक जीने–मरने की कसमें खाता है बलात्कार करता है।

'बलात्कारियों का उद्देश्य स्पष्ट रूप से शक्ति–प्रदर्शन होता है। गांवों में खून के साथ या खून के पहले दलित जातियों के साथ बलात्कार इसी मानसिकता के तहत होता है। कई बार सामूहिक बलात्कार की बजाय स्त्रियों को नंगा घुमाया जाता है। यह स्त्री शरीर के प्रति सौंदर्यशास्त्रीय जिज्ञासा नहीं, बल्कि वर्ग–वर्चस्व को सोदाहरण पुनः स्थापित करना है, कि देखो, हम तुम्हारी औरतों के साथ क्या–क्या कर सकते हैं।' (राजकिशोर

: स्त्रीत्व का उत्सव, पेज नं 115–116।)

आज बलात्कार एक हौआ इसलिए भी बन चुका है क्योंकि स्त्री शरीर को पवित्रता–शुचिता, प्रतिफल और सतीत्व की भावना से जोड़ दिया गया है। "मातृसत्तात्मक समाज में औरतों के लिए वर्जनाएं नहीं थीं, न ही किसी प्रकार का निषेध था। जीने की शर्तों के अंग के नाते यह मात्र एक प्रक्रिया थी। तब यौन कोई अपराध नहीं था। बलात्कार था ही नहीं। औरत से सम्भोग को, उसकी कोख़ की शुचिता से या पवित्रता से जोड़ा नहीं गया था। सब सहज था, इसलिए अपराध–बोध का प्रश्न ही नहीं उठता था। यह तो पितृसत्तात्मक सत्ता वाले समाज ने औरत की कोख को शुचिता से जोड़ 'बलात्कार' का भाव पैदा किया। विवाह–प्रथा भी उसी की कड़ी में है। औरत को गुलाम बनाने की मुहिम का एक सफल पड़ाव है विवाह की प्रथा। तभी से औरत में हीन भावना पनपी और पति के प्रति समर्पण। उसके प्रति वफादारी पत्नी को दासी और उसमें स्वामी मानने की भावना भर दी गई और इन सब मर्यादाओं के चाहे–अनचाहे उल्लंघन को ही स्त्री का अपराध मानना शुरू कर दिया गया। खुद औरत ने भी अपनी देह को 'अमानत' जैसा बना लिया और उस 'अमानत' की 'ख्यानत' के ख्याल के कारण जरा–सी असावधानी या जबर्दस्ती से वह खुद को ही 'कटघरे' में खड़ा करने की अभ्यस्त बना दी गई।' इसी सोच से आज स्त्री को मुक्त होना है। तभी वह बलात्कार का सामना कर सकेगी।

पुरूष की कामना उद्दीप्त होती है, जब काम्य वस्तु 'स्त्री' उसे अप्राप्य लगे। स्त्री पर आधिपत्य की भावना के साथ एक विजेता का भाव जुड़ा रहता है–यह मेरी चीज है, तो मैं इसे बलपूर्वक हासिल करूंगा। यह एक आम धारणा है। स्त्री द्वारा किए गए प्रतिरोध से पुरूष की वासना और भड़कती है। बलात्कार के प्रसंग में बने हुए कानून भी इन्हीं धारणाओं को पुष्ट करते हैं–'स्त्री को सुरक्षित स्थान में ही रहना चाहिए। अब आप रात–बिरात अकेली घूमेंगी, स्थान–कुस्थान जाएंगी, तो पुरूष का क्या ? वह तो जानवर होता है खा जाएगा। पुरूष सत्ता के प्रति यह आतंक, यह भय स्त्री मानस के लिए बेहद गलत है।'

बलात्कारी पुरुष को अश्लील साहित्य, सिनेमा, वीडियो आदि यहां तक कि अखबारों में छपने वाली यौन–उत्पीड़न संबंधी घटनाएं भी उद्दीप्त करती हैं। इंटरनेट जैसी चीज़ों ने भले सूचना तकनीक और प्रसारण में अपना नाम कमाया हो किन्तु इस बात में पूरी सच्चाई है कि इंटरनेट, मोबाइल जैसे उपकरणों में आज धड़ल्ले से अश्लील चित्र और फिल्में प्रसारित हो रहे हैं, जिससे बलात्कार जैसे जघन्य अपराध में इजाफ़ा हो रहा है। अश्लीलता को प्रसारित और प्रचारित करते ये आधुनिक उपकरण युवाओं से लेकर बुजुर्गों तक, स्कूल से लेकर महाविद्यालय तक तथा विश्वविद्यालयों से लेकर घर तक और यहां तक कि मंत्रालयों और संसद के सत्रों में भी विद्यमान हैं। लोकसभा के सांसदों द्वारा पोर्न मूवीज देखना इसी प्रकार की अश्लीलता थी।

लगातार शहर–दर–शहर, गांव, खेत–खलिहानों, स्कूलों–छात्रावासों, ऑफिसों और घर के भीतर लड़की बलात्कार जैसी हिंसा का शिकार हो रही है। मानो वह मनुष्य नहीं, निरी एक वस्तु है, जिसे जब उठाया, फाड़ा–नोचा, जितना टटोला, उतना मज़ा चखा और मन भर गया तो फेंक दिया सड़कों, जंगलों में। सबसे दर्दनाक और वीभत्स तो यह है कि फांसी पर लटका दिया, तेजाब डाल दिया, आग लगा दी, योनि को क्षत–विक्षत कर दिया, लोहे की छड़, मोमबत्ती–बोतल और न जाने क्या–क्या प्रयोग कर डाले। आखिर कहां है वह मनुष्य? ऐसी स्थितियों को देखकर और सुनकर, तो यही आकलन किया जा सकता है कि उनके लिए स्त्री मनुष्य नहीं, एक वस्तु ही है।

पहले के समय में जब लड़कियों का बलात्कार होता था, तो वह अपनी या मां–बाप और समाज की इज्जत के डर से, अपने आप को ही दोषी मानते हुए फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेती थी। किन्तु आज तो हालात इतने बुरे हो गए हैं कि बलात्कारी, जिसका बलात्कार करता है, उसी की हत्या भी कर देता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण है बलत्कृत लड़की का जिन्दा बच जाने पर, आरोपी का कानून के हाथ में जाने का, लड़की के बचने पर उसे सज़ा हो सकती है और इससे बचने के लिए वह लड़की की हत्या कर दे रहा है। वह कभी–कभी तो वह उसके चेहरे और योनि पर तेजाब फेंक योनि को ही क्षत–विक्षत कर देता है, ताकि उस बलात्कारी की शिनाख्त न हो पाए कि अमुक व्यक्ति ने उसका बलात्कार किया। बलात्कारी ऐसा कोई सबूत नहीं छोड़ना चाहता, जिससे वह कानून के हाथों गिरफ्तार हो पाए। बलात्कारियों के मंसूबे बहुत बढ़ गए हैं, वे षड्यंत्रकारी होते जा रहे हैं। आज बलात्कार के दर्शन के पीछे के कारणों का भी हमें पता लगाना होगा।

बलात्कार जैसा जघन्य अपराध इतना बढ़ता जा रहा है कि हर लड़की और औरत असुरक्षित महसूस

करती है। निदान और निराकरण हेतु अगर एक तरफ कोई कानून बन भी रहा है, तो दूसरी तरफ लगातार बलात्कार के दर्जनों प्रति मिनट–प्रति–घंटे केस आ रहे हैं। बलात्कारियों को शह देने वाले, उनकी मंशा और अत्याचारों को कोई नहीं रोक पा रहा है और स्त्रियों पर ही लगातार शिकंजे कसे जा रहे हैं। स्त्रियों को अपनी शिक्षा, अपने कार्य–व्यवसाय सबसे हाथ धोना पड़ रहा है।

भारत एक ऐसा देश है, जहां पर जब कोई दुर्घटना घट जाती है, तब उसके निराकरण के लिए कोई कार्यवाही होती है या सरकार की आंखें खुलती हैं। बदायूं में शौच करने गईं दो बहनों का सामूहिक बलात्कार कर उन्हें पेड़ से फांसी पर लटका दिया गया। कुछ लोगों का मानना था कि यदि उनके यहां शौचालय होता तो शायद ऐसी दुर्घटना नहीं होती। किन्तु यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि क्या गांवों में शौचालय के न होने से पहले बलात्कार नहीं हुए होंगे या फिर छेड़खानियां नहीं हुई होंगी? फिर पहले ही सरकार की आंखें क्यों नहीं खुलीं? जब लड़कियों को अपनी हवस का शिकार बनाकर ऐसे ही फांसी पर लटकाया जाता रहेगा, तेजाब और ऐसिड अटैक होते रहेंगे, क्या तब यहां के सरकार की आंखें खुलेंगी? इसमें कोई गारण्टी नहीं है कि उनकी आंखें खुलेंगी भी। एक बात और है कि गांवों में शौचालय बना देने से क्या बलात्कार खत्म हो जाएंगे या फिर इसके लिए और भी उपाय होने चाहिए, जिससे बलात्कारियों और बलात्कार पर काबू पाया जा सके। निर्भया केस को आज दो साल से ज्यादा होने जा रहे हैं, दोषियों को हवालात में डाला गया, उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई तो क्या बलात्कार कम हो गए या फिर बन्द हो गए? एक तरफ कड़े से कड़े कानून बन रहे हैं तो दूसरी तरफ बलात्कारियों को मुलायम सिंह यादव जैसे नेता उनकी नादानी और छोटी सी गलती मानकर छोड़ देने के लिए कह रहे हैं। ऐसे में बलात्कारियों का मनोबल और बढ़ता जा रहा है जिसका नतीजा बदायूं की मार्मिक घटना है।

"आधुनिक युग की मुश्किल यह है कि जब समाज बहुत विकसित हो जाता है, तो वह विघटित होने लगता है। सामाजिक नियंत्रण का स्थान राज्य ले लेता है। तब बलात्कार एक असामाजिक घटना न होकर एक तकनीकी अपराध हो जाता है, जिसे सिद्ध करने के लिए ढेर सारे साक्ष्यों की ही नहीं, अपितु अति चतुर एवं प्रशिक्षित तर्कों की भी जरूरत होती है। बलात्कार के प्रति यह अतिशय तकनीकी दृष्टिकोण अंततः बलात्कार को ही प्रोत्साहित करता है। बलात्कारी अब जानता है कि वह क्या–क्या कहकर या करके बच सकता है।'

"विडंबना यह है कि अब भी अदालती प्रक्रिया आमतौर पर ऐसी है कि बलात्कारी के छूट जाने की संभावना ही ज्यादा होती है। इसका एक कारण पुरूष वर्ग का वर्ग स्वार्थ भी है। बलात्कार पुरूष ही करता है और अदालतों पर भी पुरूषों का ही कब्जा है। जिस पुलिस का काम बलात्कारी को सजा दिलाना है, वह स्वयं मौका पाते ही बलात्कार करते हुए पाई जाती है। वस्तुतः बलात्कारों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए उसका समाजशास्त्रीय अध्ययन किए जाने की जरूरत है। जड़ों के बारे में विचार न कर पत्तों को सज़ा देने के अति उत्साह में अनेक ऐसे प्रश्न दब गए हैं जो हमारी सभ्यता की बुनियादों पर पुनर्विचार करने की मांग करते हैं।"

आज हर जगह ताकत, बल, धन की पूजा हो रही है। धर्म और सत्ता की आड़ में सभी अपनी रोटी सेंकने में लगे हुए हैं, कोई धर्म का सहारा लेकर बलात्कार कर रहा है तो कोई सत्ता में आने के बाद उसका सहारा लेकर बलात्कार कर रहा है और करा रहा है। आज बाहुबल तथा अपनी ताकत दिखाकर लोग दूसरों की जिंदगी के साथ तरह–तरह से खेल खेल रहे हैं। "ताकत के इस्तेमाल का कोई नीतिशास्त्र नहीं है। इसलिए बलात्कार करने वाला अपनी ताकत का इस्तेमाल करते हुए यह सोचता है कि मैं क्या गलत कर रहा हूं। यह वसुंधरा वीरों के भोगने के लिए है। अतः वह बलात्कार को अपनी वीरता मानता है। ताकत या हिंसा का यह इस्तेमाल शर्म या ग्लानि की बात बने, इसके लिए ताकत के सभी संबंधों को बदलना होगा। उन्हें मानवीय संबंध बनाना होगा। यह प्रक्रिया राज्य से लेकर परिवार तक सभी स्तरों पर चलनी चाहिए। तभी बलात्कार को एक असामान्य घटना बनाया जा सकता है। सिर्फ उग्र कानून मनुष्य को मानवीय नहीं बना सकते।'

आज उदारीकरण की सारी प्रक्रियाएं कामुकता के उच्छृंखल अभिव्यक्तियों पर टिकी हुई हैं। जिस तरीके से बलात्कार की घटनाएं हो रही हैं, सभी ने अपने दांतों तले उंगली दबा ली है। इसकी सीमाएं क्या और कितनी होंगी आज इस पर सोचने की ज्यादा जरूरत है।

(प्रियंका सोनकर जेएनयू में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं)

●

शिक्षा

सिलेबस में दलित साहित्य शामिल हो

सी.बी. भारती

शिक्षा मानव को ज्ञान विज्ञान के साथ–साथ सामाजिक सरोकारों से जोड़ती है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य लिपियों, भाषाओं व साहित्य से अवगत होता है। लिपि और भाषाएं मानव को विचार–विनिमय का माध्यम प्रदान करती हैं। विश्व के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्राकृतिक वातावरण में मानव समुदाय किस प्रकार जीवन–यापन कर रहा है, उसके आचार–विचार कैसे हैं, उसका रहन–सहन कैसा है, उसके जीवन मूल्य क्या हैं, की जानकारी भी शिक्षा के माध्यम से ही संभव होती है। अपने देश के बहुसंख्यक दलित समुदाय की सामाजिक स्थितियां क्या हैं, का ज्ञान शिक्षा एवं साहित्य के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है। किन्तु वह जन–समुदाय, जिसे सदियों तक धर्मशास्त्रों का सहारा लेकर शिक्षा से ही वंचित रखा गया, के जीवन की विसंगतियों की पीड़ा के समावेश के साहित्य को आजतक भारतीय शैक्षिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया गया है। शिक्षा के सभी स्तरों पर हमारे शैक्षिक पाठ्यक्रम में समानता, स्वतंत्रता व सामाजिक परिवर्तन के साहित्य का अभाव है। देश के भावी नागरिकों को दी जाने वाली शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण व्यापक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। इसके उलट समाजिक विषमता, अलगाव, साम्प्रदायिकता, गुलामगिरी, यथास्थितिवाद व वासना के रासरंग के साहित्य से पूरा शैक्षिक पाठ्यक्रम भरा पड़ा है। राष्ट्र के सभी समुदायों से जुड़े महापुरूषों, उनके जीवनादर्शों, समुदायों की सामाजिक स्थितियों, यंत्रणाओं तथा जीवन मूल्यों के साहित्य को शैक्षिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। कोई भी शैक्षिक पाठ्यक्रम तब तक अधूरा ही रहेगा, जब तक उसमें देश के सभी निवासियों के सामाजिक सरोकारों के साहित्य का समावेश न हो। समाज के किसी वर्ग विशेष, समुदाय विशेष अथवा वर्चस्व प्राप्त वर्ग द्वारा सृजित साहित्य के ही चयन मात्र से सबके हित की व सर्वांगीण विकास की परिकल्पना की अवधारणा ही अधूरी होगी।

दलित साहित्य भारत के बहुसंख्यक समाज की पीड़ा, उनकी व्यथा, उनके भोगे हुए यथार्थ का साहित्य है। दलित साहित्य सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों को तार–तार कर देने के लिए संघर्षरत् है। यह समूचे समाज के उत्थान के कल्याणकारी भावना से ओत–प्रोत है तथा आज के परिप्रेक्ष्य में यही समाज के लिए उपयोगी भी है। साहित्य नवयुग का व्यापक, वैज्ञानिक, यथार्थपरक व संवेदनशील हस्तक्षेप है। वह परम्परागत कलात्मकता से इतर, अनगढ़ व अटपटे शब्दों में सामाजिक अन्याय के विरूद्ध आक्रोश, सामाजिक परिवर्तन के आवाहन, उत्पीड़न व शोषण के विरूद्ध विद्रोह का साहित्य है। छोटी–छोटी घटनाओं की लघुता की नोटिस लेने की प्रवृत्ति, ज्वलन्त सामाजिक समस्या, बेघर, फुटपाथ व झुग्गी–झोंपड़ियों में रहने वाले, पेट की भूख व श्रम से बोझिल सम्मानच्युत लोग, पुरूष की यातनाओं से कराहती स्त्री, वर्ण व्यवस्था से उपजी अमानवीयता, शोषण के सभी रूप, शोषकों के घृणित अमानवीय चरित्र को उकेरना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है। दलित साहित्य स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व का साहित्य है। दलित साहित्य का केंद्रबिन्दु मानव और मानव के इर्द–गिर्द ही घूमता है। दलित साहित्य सामाजिक विश्लेषण की सतत् प्रक्रिया व स्थापित मान्यताओं के पुनर्परीक्षण व उनके छिन्न–भिन्न कर देने की एक अनबुझी प्यास है। वर्ण व्यवस्था से उपजी अमानवीय त्रासदी से मुक्ति की छटपटाहट ही दलित साहित्य का मूल स्वर है। साहित्य की संवेदनाओं को कुरेदने, उकेरने व उन्हें शक्ति देने का व्यापक प्रयास है दलित साहित्य। दलित साहित्य यथास्थितिवाद के विरूद्ध परिवर्तन के हुंकार की सफल सुगबुगाहट है। सामाजिक परिवर्तन की भावना का निरंतर विकास, परंपरागत साहित्यिक–सामाजिक मानदंडों, मिथकों को तोड़ने, सामाजिक अन्याय से मुक्ति, भाग्यवादी सोच को नकारने व विवेक तथा तर्क को महत्ता देने, व्यवस्था के दोहरे मानदंडों का बदलाव, अन्याय व

अत्याचार का प्रतिरोध, उपभोग व शोषण की संस्कृति के विरूद्ध विद्रोह और उत्पादन की श्रम संस्कृति की स्थापना ही दलित साहित्य का प्रतिपाद्य है।

इसलिए वर्तमान परिवेश में देश के सभी विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षा परिषद्ों, बेसिक पाठशालाओं आदि में सभी स्तर पर दलित साहित्य को शैक्षिक पाठ्यक्रम में रखे जाने की महती आवश्यकता है। शैक्षिक पाठ्यक्रम में दलित साहित्य मानवीयता के प्रसार का अवसर प्रदान करेगा। छात्र बचपन से ही भारतीय समाज की विसंगतियों, अमानवीय प्रथाओं, अमानवीय व्यवहारों, मानवीय संकीर्णताओं, विडम्बनाओं से परिचित होकर स्वस्थ समुन्नत नागरिक के रूप में विकसित हो सकेंगे। मानवीयता का प्रसार सिर्फ भाषणों, विज्ञापनों, समारोहों व संकल्पों से ही संभव नहीं है। मानवीयता का पाठ शैक्षिक पाठ्यक्रमों में साहित्य के माध्यम से बचपन से ही शिशुओं को पढ़ाया जाना चाहिए।

वर्तमान परिवेश में देश के सभी विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षा परिषद्ों, बेसिक पाठशालाओं आदि में सभी स्तर पर दलित साहित्य को शैक्षिक पाठ्यक्रम में रखे जाने की महती आवश्यकता है। शैक्षिक पाठ्यक्रम में दलित साहित्य मानवीयता के प्रसार का अवसर प्रदान करेगा।

दलित साहित्य मानवीयता का ही पर्याय है। जीवन की आदर्श परिकल्पनाएं ही नहीं, अपितु सामाजिक सरोकार की यथार्थ घटनाएं दलित साहित्य की केंद्रबिन्दु हैं। मानवीयता को सबसे सशक्त रूप में दलित साहित्य में ही अंगीकार किया गया है। दलित साहित्य से इतर अन्यत्र मानवीयता के लिए आंसू तो बहाए गए हैं पर वहां ओढ़ी हुई सहानुभूति व कृत्रिमता स्पष्ट झलकती है। उनमें वह जीवंतता, यथार्थ, संवेदनशीलता, उष्मा, ऊर्जा अथवा भोगी हुई सत्यता नहीं मिलती।

दलित साहित्य मानव द्वारा मानव – वर्ण व्यवस्था, धर्म, लिंग जाति का आधार लेकर किए गए शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाता है। भारतीय समाज के शोषण के प्रमुख आधार वर्ण–व्यवस्था व जातिवाद के विरूद्ध दलित साहित्य अत्यन्त प्रखर है। शैक्षिक पाठ्यक्रम में दलित साहित्य के समावेश से स्वस्थ भारतीय समाज की रचना का मार्ग प्रशस्त होगा। दलित साहित्य मानव समाज के बीच सम**ता** का पोषक है। न कोई ऊंचा, न कोई छोटा, न कोई बड़ा, न कोई आभिजात्य, न कोई अशपृश्य, सभी समान। दलित साहित्य वर्ण–व्यवस्था से उपजी विषमता को समाप्त कर समतामूलक समाज के निर्माण का पक्षधर है। दलित साहित्य का उद्देश्य है आर्थिक व सामाजिक समानता।

दलित साहित्य सामाजिक बदलाव का दस्तावेज़ और संवाहक है। दलित साहित्य भारतीय समाज को अंधविश्वासों, रूढ़ियों, वर्जनाओं, असमानताओं व संत्रासों से मुक्त कर वैज्ञानिक सोच के विकास का पक्षधर है। मानव में प्रगतिशीलता, सामाजिक परिवर्तन की भावना, विश्वास, श्रमशक्ति व संघर्ष क्षमता के विकास हेतु शैक्षिक पाठ्यक्रमों में दलित साहित्य का समावेश होना आज की आवश्यकता है। विनाश एवं विकास की वयःसन्धि पर स्थित भारतीय मानव समाज के बीच वर्तमान परिवेश में भाईचारा, सौहार्द व बंधुत्व की भावना विकसित करने का एकमात्र उपाय शैक्षिक पाठ्यक्रम में दलित साहित्य का समावेश है। समाज में जैसे–जैसे वैज्ञानिक विचारों को मान्यता मिल रही है, वैसे–वैसे दलित साहित्य की महत्ता स्थापित होती जा रही है। किंतु अब भी दूषित व संकीर्ण मानसिकता के तथाकथित बुद्धिजीवी दलित साहित्य की स्थापना में रोड़े अटका रहे हैं। वह यह बार–बार प्रश्न करते हैं कि क्या साहित्य भी दलित होता है। अब भी अपने मन से वे वर्ण–व्यवस्था को नहीं मिटा पा रहे हैं। वे साहित्य में दलित साहित्य के क्रांतिकारी अभ्युदय को नहीं पचा पा रहे। राष्ट्र की अधिकांश भाषाओं में दलित साहित्य का अबाध सृजन वर्तमान सदी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। साहित्य का वर्तमान युग साहित्य के इतिहास में निश्चय ही दलित साहित्य युग के नाम से संबोधित किया जाएगा। संकीर्ण मानसिकता के लोगों को भी बहुमत की भावनाओं का आदर करते हुए इसे स्वीकारना ही होगा। आज भारत के संविधान निर्माता बाबासाहेब डा. भीमराव आम्बेडकर, महात्मा जोतिबा फुले व स्वामी अछूतानन्द को स्वीकारने, उनके दर्शन पर तर्क–वितर्क करने की बुद्धिजीवी वर्ग व राजनैतिक दलों में होड़ चल रही है। चाहे यह होड़ निहित स्वार्थवश हो पर इसके दूरगामी परिणाम भारतीय समाज के लिए निश्चय ही आशाजनक होंगे। आज आवश्यकता है शैक्षिक पाठ्यक्रमों का पुनर्परीक्षण कर, उसमें से रूढ़िवादी साहित्य हटाकर, वैज्ञानिक विचारों से ओत–प्रोत दलित साहित्य को सम्मिलित किए जाने की। हमें तुलसी, सूर, निराला, प्रसाद ही नहीं बल्कि समूचे हिन्दी साहित्य को उनके द्वारा भारतीय समाज पर पड़ रहे प्रभावों के परिप्रेक्ष्य में पुनर्मूल्यांकित करना होगा।

(सीबी भारती दलित लेखक हैं)

●

प्रवासी साहित्य की अवधारणा और स्त्री कथाकार

निर्मल रानी

प्रवासी साहित्य का संबंध प्रवासी लोगों द्वारा लिखे साहित्य से है। प्रश्न यह उठता है कि ये प्रवासी लोग कौन हैं और इनके साहित्य की विशेषता अथवा सुन्दरता क्या है? इसी से जुड़ा है इस साहित्य का स्वरूप और सौन्दर्यशास्त्र।

आजकल साहित्य में कई विमर्श प्रचलित हैं। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की भांति, इधर प्रवासी विमर्श ने भी जगह बनाई है। प्रवासी विमर्श की विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत रचनात्मक साहित्य अधिक लिखा गया है। इसके आलोचनात्मक पक्ष पर उतना बल नहीं दिया गया।

कमलेश्वर ने प्रवासी साहित्य पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि, 'रचना अपने मानदंड खुद तय करती है। इसलिए उसके मानदंड बनाए नहीं जाएंगे। उन रचनाओं से मानदंड तय होंगे।'

प्रवासी लोगों की तीन श्रेणियां बनाई जा सकती हैं। एक श्रेणी में, वे लोग हैं जो गिरमिटिया मजदूरों के रूप में फीजी, मॉरीशस, त्रिनिडाड, गुआना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भेजे गए थे। दूसरी श्रेणी में, अस्सी के दशक में खाड़ी देशों में गए अशिक्षित–अर्द्धशिक्षित, कुशल अथवा अर्द्धकुशल मजदूर आते हैं। तीसरी श्रेणी में, अस्सी–नब्बे के दशक में गए सुशिक्षित मध्यवर्गीय लोग हैं जिन्होंने बेहतर भौतिक जीवन के लिए प्रवास किया।

इन तीन तरह की श्रेणियों में से, साहित्य के वर्तमान समय में, अंतिम श्रेणी का ही प्रभुत्व जैसा दिखाई देता है। गिरमिटिया मजदूरों की बाद की पीढ़ियों में से अधिकांश ने रोजगार तथा अन्य कारणों से, हिन्दी या भोजपुरी के अलावा दूसरी अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं को अपना लिया। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत ही एक ऐसे हिंदी लेखक हैं जिनको उल्लेखनीय माना जाता है। उनके उपन्यास 'लाल पसीना' को काफी सराहा गया है। वहीं फीजी, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका अथवा गुआना से कोई ऐसा लेखक चर्चित नहीं हुआ, जिसको प्रवासी लेखन में सराहा गया हो।

इन दो वर्गों के लेखन को ही प्रवासी साहित्य की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः पराये देशों में पराये होने की अनुभूति और उस अपरिचित परिवेश में समायोजन के प्रयास, नॉस्टेलजिया, सफलताएं और असफलताओं को ही प्रवासी साहित्य का आधार माना जा सकता है। राजेन्द्र यादव ने प्रवासी साहित्य को इसीलिए 'संस्कृतियों के संगम की खूबसूरत कथाएं' कहा है। हालांकि यह केवल संगम नहीं है बल्कि कई अर्थों में तो मुठभेड़ भी है।

साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि प्रवासी साहित्य, नॉस्टेलजिया के रचनात्मक रूपों का समुच्चय है। नॉस्टेलजिया को प्रथम दृष्टया नकारात्मक मूल्य माना जाता है परन्तु यह उचित नहीं होगा। नॉस्टेलजिया का अर्थ है– घर की याद या फिर अतीत के परिवेश में विचरना।

प्रवासी साहित्य में नॉस्टेलजिया या परायेपन की अनुभूति, रचनात्मक यात्रा का केवल पहला चरण है। दूसरे चरण में, इस मनःस्थिति से संघर्ष शुरू होता है और तीसरे चरण में अपनी नई पहचान को स्थापित करने की जद्दोजहद दिखाई पड़ती है।

इन तीनों ही चरणों में, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण होता है। खान–पान, पहनावा, बोली–भाषा, पर्व–त्योहार का भी उल्लेख आता है।

प्रवासी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास,गजल आदि विधाओं में मुख्यतया लिखा गया है। परन्तु कहानी इस विमर्श की प्रधान विधा बन गई है।

सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, जाकिया जुबैरी, नीना पॉल, दिव्या माथुर, उषा वर्मा, स्नेह ठाकुर, जय वर्मा और उषाराजे सक्सेना ने प्रवासी लेखिकाओं के रूप में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई हैं।

सुषम बेदी के 'हवन' और 'मैंने नाता तोड़ा' जैसे

उपन्यास काफी चर्चा में रहे हैं। इनमें अमेरिका के परिवेश में एक विधवा स्त्री के जीवन को दिखाया गया है। इसके अलावा उनके कहानी संग्रह 'चिड़िया और चील' ने भी पर्याप्त ख्याति पाई है।

जाकिया जुबैरी के कहानी संग्रह 'सांकल' में स्त्री मन की कशमकश को चित्रित किया गया है। जाकिया की कहानियों में नास्टेलजिया और वहां परिवार के बीच की स्थितियों का मार्मिक चित्रण मिलता है। कहानियों में मां और बेटी के अलावा, मां और पुत्र के बीच स्वाभिमान को भी बहुत ही संवेदनशील ढंग से उकेरा गया है। 'सांकल' के अलावा 'मारिया' और 'लौट आओ तुम' ऐसी ही कहानियां हैं।

नीना पॉल ने दो उपन्यास 'तलाश' और 'कुछ गांव–गांव कुछ शहर शहर' लिखे हैं। इसके अलावा उनके दो कहानी संग्रह भी हैं। 'कुछ गांव–गांव कुछ शहर शहर' उपन्यास में इंग्लैंड के लेस्टउर शहर के बनने की कहानी के साथ–साथ गुजरातियों के वहां जमने और संघर्ष करने को गूंथा गया है।

उपन्यास में निशा के माध्यम से एक गुजराती परिवार की तीन पीढ़ियों का संघर्ष दिखाया गया है। निशा, उसकी मां सरोज बेन और निशा की नानी सरला बेन गुजरात से युगांडा और युगांडा से लेस्टउर पहुंचे हैं। इन भारतीयों की कठोर मेहनत करने की क्षमता और कुशल व्यांपार बुद्धि ने एक नए देश में भी धीरे–धीरे उन्हें इजाजत दिला दी।

इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें उपन्यासकार ने संतुलित और निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाया है। भारतीयों के साथ हुए भेदभाव तो दिखाए ही गए हैं परन्तु अंग्रेजों के कानून के पाबन्द होने को भी ईमानदारी से दिखाया गया है। साथ ही, लैस्टउर के इतिहास और भूगोल के सुन्दर चित्र खींचे गए हैं। उपन्यास को पढ़कर लेस्टउर का पूरा नक्शा स्पष्ट हो जाता है।

दिव्या माथुर की शुरूआती कहानियों में कहानी का शिल्प कम और संवेदना अधिक है अर्थात् कहानी में चरित्र–चित्रण, संवाद, वातावरण की अपेक्षा, वे कथ्य पर फोकस करती हैं, जो उन्हें कहना है, वही उनके लिए मुख्य रहता है। 'तमन्ना' कहानी में एक ऐसी भारतीय स्त्री की कथा है जो लगातार तनाव में है। झांसी में उसका एक सड़कछाप प्रेमी था, जो शादी के बाद भी उसे धमकी भरे खत लिखता है। सास उसे समझाती है। 'पंगा और अन्य कहानियां' तथा '2050' जैसी कहानियों तक पहुंचते–पहुंचते उनकी कहानियों में शिल्प का प्रबल आग्रह दिखाई देने लगता है।

शिल्प का ऐसा ही प्रयोग उन्होंने अपने पहले उपन्यास में किया है। 'शाम भर बातें' नाम के इस उपन्यास में शुरू से आखिर तक केवल संवाद ही संवाद हैं अर्थात् बातें ही बातें हैं। इन बातों के बीच ही इंसान की इंसानियत और हैवानियत, व्यवस्था के विद्रूप तथा परिस्थितियों के पेंच सामने आते हैं।

उपन्यास एक पार्टी में खुलता है और उसका अंत भी पार्टी के साथ ही होता है। यह पार्टी मकरंद मलिक और मीता मलिक के घर में हो रही है। हैरानी की बात यह है कि लंदन शहर में चलने वाली इस पार्टी में लगभग सभी मेहमान भारतीय हैं। इसकी समाजशास्त्रीय पड़ताल की जरूरत है कि आखिर क्या वजह है कि वहां भारतीय समुदाय और दूसरे समुदायों के बीच समाजीकरण की प्रक्रिया एकदम मंद है। युवा पीढ़ी में जरूर यह बदलाव दिखता है परन्तु पहली भारतीय पीढ़ी पूरी तरह से बंद जीवन जीती है। उनके रहन–सहन और सोचने के तरीके भी भारतीय मध्यवर्गीय चरित्रों की तरह हैं। उच्चायोग से आए अधिकारी अपने को बहुत उच्च स्थान पर मानते हुए अन्य भारतीयों के साथ तुच्छ व्यवहार करते हैं।

उपन्यास एक पार्टी में खुलता है और उसका अंत भी पार्टी के साथ ही होता है। यह पार्टी मकरंद मलिक और मीता मलिक के घर में हो रही है। हैरानी की बात यह है कि लंदन शहर में चलने वाली इस पार्टी में लगभग सभी मेहमान भारतीय हैं। इसकी समाजशास्त्रीय पड़ताल की जरूरत है कि आखिर क्या वजह है कि वहां भारतीय समुदाय और दूसरे समुदायों के बीच समाजीकरण की प्रक्रिया एकदम मंद है। युवा पीढ़ी में जरूर यह बदलाव दिखता है परन्तु पहली भारतीय पीढ़ी पूरी तरह से बंद जीवन जीती है। उनके रहन–सहन और सोचने के तरीके भी भारतीय मध्यवर्गीय चरित्रों की तरह हैं। उच्चायोग से आए अधिकारी अपने को बहुत उच्च स्थान पर मानते हुए अन्य भारतीयों के साथ तुच्छ व्यवहार करते हैं।

'शाम भर बातें' उपन्यास में लंदन में बसने वाले अधिकांश भारतीयों की मनोवृत्ति और सामाजिक व्यवहारों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है।

सुधा ओम धींगरा ने 'कौन सी जमीन अपनी' जैसे कहानी संग्रह से अपनी जगह बनाई है। सुधा का लेखन एक सांस्कृतिक सेतु की तरह है। अमेरिका में मस्त और व्यस्त भारतीय पीढ़ी के बीच त्रस्त पीढ़ी के भी चित्र उनकी कहानियों में दिखाई देते हैं। उनकी कहानियों में भारत की स्मृति के क्षण भी हैं तो अमेरिका में अपनी पहचान जमाने के चित्र भी हैं। 'टारनेडो' कहानी भारत की याद और उसकी खुशबू की कहानी है। वहीं 'क्षितिज से परे' कहानी में एक प्रताड़ित स्त्री के विद्रोह को दर्शाया गया है। 'कौन सी जमीन अपनी' कहानी की शुरूआत ही अपने वतन की याद से होती है। 'ओये मैंने अपना बुढ़ापा यहां नहीं काटना, यह जवानों का देश है, मैं तो पंजाब के खेतों में, अपनी आखिरी सांसे लेना चाहता हूँ। 'जब वह अपने बच्चों को यह कहता, तो बेटा झगड़ पड़ता, 'अपने लिए आप कुछ नहीं सहेज रहे और गांव में जमीनों पर जमीन खरीदते जा रहे हैं।'

यह कहानी एक तरफ नास्टेलजिया की भावुकता को प्रकट करती है तो दूसरी ओर यथार्थ की वीभत्स जमीन को भी उजागर करती है। मनजीत सिंह सोढी अपनी पत्नी मनविन्दर के साथ अमेरिका में रहता है। दो होनहार बच्चे हैं जो डॉक्टरी और वकालत पढ़कर वहीं विवाह कर लेते हैं। बेटा और मां दोनों ही मनजीत सिंह को समझाते रहते हैं कि पंजाब में अपने भाई को जमीन खरीदने के लिए बार–बार पैसा न भेजा करे परन्तु वह मानता ही नहीं। बच्चों की शादी के बाद जब वह और उसकी पत्नी मनविन्दर नवांशहर, पंजाब अपने पैतृक गांव पहुंचते हैं तो उनके साथ मेहमानों की तरह व्यवहार किया जाता है। मनजीत को यह अटपटा लगता है। छोटा भाई ही नहीं, मां और बाप भी बदल जाते हैं।

मनजीत जब अपने पैसों से खरीदी हुई जमीनों के हक की बात करता है तो भाई बुरी तरह क्रोध में आ जाता है। रात में मनजीत को भाई की फुसफुसाहटों भरी आवाज से पता चलता है कि उसकी योजना दोनों की हत्या कर ठिकाने लगाने की बन चुकी है। इसमें वह पुलिस को भी शामिल होने की बात कहता है। उसका मन छलनी हो जाता है। 'इसी द्वंद्व में, वह एक रात पानी पीने उठा, तो नीचे के कमरे में कुछ हलचल महसूस की, पता नहीं क्यों शक–सा हो गया। दबे पांव वह नीचे आया, तो दार जी के कमरे से फुसफुसाहट और घुटी–घुटी आवाजें आ रही थीं। दोनों भाई दार जी को कह रहे थे–'मनजीते को समझा कर वापिस भेज दो,नहीं तो हम किसी से बात कर चुके हैं, पुलिस से भी सांठ–गांठ हो चुकी है। केस इस तरह बनाएंगे कि पुरानी रंजिश के चलते, वापिस लौटकर आए एनआरआई का कत्ल।' मनजीत और मनविन्दर रात को ही चुपचाप घर छोड़कर निकल जाते हैं। मनजीत चलते वक्त मनविन्दर से पूछता है 'जान नहीं पा रहा हूं कि कौन सी जमीन अपनी है?'

सुधा ओम धींगरा की कहानियों की यही विशेषता है कि उसमें आदर्श का संसार भी है परन्तु वह मूल रूप से यथार्थ की जमीन पर खड़ा है। आदर्श जल्द ही यथार्थ से खण्डित हो जाता है। उनके यहां कुछ कहानियां ऐसी भी हैं जो विदेश के ही चरित्रों और स्थितियों पर केन्द्रित हैं। यह कहानियां वास्तव में एक भारतीय की नजर से विदेशी भूमियों को देखना है।

उनकी एक कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' को पढ़ते हुए पाठक को सहसा ही प्रेमचन्द के घीसू और माधव याद आने लगें, तो कोई आश्चर्य नहीं। घीसू और माधव के बरक्स जेम्स् और पीटर ज्यादा निर्लज्ज और अराजक हैं। घीसू और माधव कम से कम काम इसलिए नहीं करना चाहते कि वहां काम का कोई उचित मूल्य नहीं बचा है। इसलिए प्रेमचन्द उन्हें ज्यादा विचारवान

भी कहते हैं। परन्तु सुधा ओम धींगरा के ये दोनों पात्र काम करना ही नहीं चाहते और अय्याशी पूरी करना चाहते हैं। उनकी मां टैरी भी ऐसी ही थी और लगभग सभी भाई–बहन भी। वे होमलेस होने का बहाना बनाकर भीख मांगते हैं, सूप किचन में मुफ्त में खाना खाते हैं, शैल्टोर होम में सो जाते हैं। यह सब सुविधाएं अमेरिका की सरकार गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों के लिए प्रदान करती है।

एक भारतीय की नजर से इस यथार्थ को देखते हुए कहानीकार ने बहुत ही सूक्ष्म घटनाओं और गतिविधियों का ब्योरा दिया है। इसमें वेश्यावृत्ति, शराबखोरी की लत, ड्रग्स पैडलर्स सब शामिल हैं।

जय वर्मा ने इधर कहानी के क्षेत्र में कदम बढ़ाया है परन्तु उनकी कहानियों ने एक संवदेनशील कथाकार की उम्मीद जगाई है। 'सात कदम' उनकी ऐसी ही कहानी है जो अपनी संरचनात्मक बुनावट और संवेदनात्मक कारीगरी के लिए याद रखने योग्य है।

उषाराजे सक्सेना की 'वो रात' बेहद चर्चित कहानी रही है। एक मां और उसके छोटे बच्चों के साथ कल्याणकारी राज्य की भूमिका पर केन्दित इस कहानी की मर्मस्पर्शी संवेदना झकझोर देती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि एक परिघटना के रूप में यह साफ दिखाई देता है कि पूरे प्रवासी साहित्य की बागडोर स्त्री रचनाकारों के हाथ में है। एक नई दुनिया का पता और उसकी आंतरिक गतिविधियों की सूचना इन कथाकारों की कहानियों और उपन्यासों से पाठकों को मिलती है। इन कथाकारों की रचनाशीलता ने हिन्दी साहित्य का परिदृश्य और विस्तृत किया है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. कुछ गांव गांव, कुछ शहर शहर, नीना पॉल, यश पब्लिकेशन्स, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032
2. कौन सी जमीन अपनी, डॉ. सुधा ओम धींगरा, भावना प्रकाशन, 109–ए, पटपड़गंज, दिल्ली 110091
3. शाम भर बातें, दिव्या माथुर, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली –110002
4. चिड़िया और चील, सुषम बेदी, अभिरूचि प्रकाशन, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली 110032
5. हवन, सुषम बेदी, अभिरूचि प्रकाशन कर्ण गली, विश्वासनगर, दिल्ली–110032

(निर्मल रानी आम्बेडकर विवि के स्कूल ऑफ लिबरल स्टडीज में शोधार्थी हैं)

●

शोक संवेदना

भारतीय जननाट्य संघ (इप्टा) के महासचिव कामरेड जीतेन्द्र रघुवंशी और प्रसिद्ध दलित लेखक तुलसीराम का आकस्मिक निधन प्रगतिशील–जनवादी लेखकों–संस्कृतिकर्मियों के लिए एक स्तब्धकारी सूचना है।

कामरेड जीतेन्द्र रघुवंशी सीपीआई के सदस्य थे और लम्बे अर्से से इप्टा के कामकाज से जुड़े हुए थे। इप्टा के माध्यम से गांवों तक नाटकों को ले जाने और ग्रामीण कलाकारों को आगे बढ़ाने का काम उन्होंने बहुत गंभीरता से किया। वे आगरा के भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय के अंतर्गत केएम इंस्टीट्यूट में विदेशी भाषा विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हो चुके थे।

दलित लेखक तुलसीराम की आत्मकथा के दो खंड 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' दलित साहित्य में मील का पत्थर साबित हुए। तुलसीराम का निधन न सिर्फ हिन्दी साहित्य के लिए बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य के लिए भी अपूरणीय क्षति के समान है। तुलसीराम अपनी वैज्ञानिक सोच और विवेकपूर्ण दृष्टि के लिए सदैव जाने जाएंगे।

जनवादी लेखक संघ एवं 'युद्धरत आम आदमी' परिवार कामरेड जीतेन्द्र रघुवंशी और तुलसीराम के निधन पर गहरा शोक व्यक्त करता है। उनका जाना साम्प्रदायिक ताकतों और अभिव्यक्ति की आजादी का गला घोंटने वाले संकीर्णतावाद के उभार के इस दौर में एक बड़ी क्षति है।

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
(महासचिव)
संजीव कुमार
(उप–महासचिव)

सिनेमा के दर्शक : सामूहिक पाठ से वैयक्तिक पाठ की ओर

दिलीप शाक्य

सिंगल–स्क्रीन थियेटर से लेकर यू–ट्यूब वीडियो तक, फिल्म देखने के अनुभव ने एक लम्बी यात्रा तय की है। यूं देखा जाए तो सिनेमा कहानी कहने की एक आधुनिक प्रणाली के सिवा और क्या है? कहानी कहने की परम्परा का भारतीय अतीत अत्यंत प्राचीन है। गुफाओं भित्ति–चित्र कला से लेकर उत्तर–आधुनिक युग की विज्ञापन–कला तक कहानी कहने के करोड़ों पैटर्न आपको मिलेंगे। सिनेमा की कला में भी तीन घंटे की फिल्म से लेकर पांच मिनिट की अवधि तक की फिल्में बनाने का प्रचलन आज आम है।

एक

किसी समय विशेष में जो बात पुस्तक के बारे में एक कल्पना भर रही होगी वो छापेखाने के अविष्कार के बाद आश्चर्यजनक रूप से वास्तविक हो गई। भारतीय इतिहास के मध्यकाल पर निगाह डालें तो यह बात एक खास कोण से समझ आएगी कि पुस्तक और उसके सामूहिक पाठ का मनुष्य की सामाजिक चेतना से एक गहरा संबंध रहता आया था। छापेखाने ने सामूहिक पाठ का यह आकर्षण तोड़ दिया और श्रोता के स्थान पर पाठक को प्रतिस्थापित किया। यानी कि अब पाठक को यह बाध्यता नहीं रह गई कि वह किसी पुस्तक में दर्ज कहानी को जानने के लिए किसी समूह में श्रोता बनकर दाखिल हो। वह अगर इतना शिक्षित हो कि किताब को पढ़ सके तो कहीं भी कभी भी उससे अपना रिश्ता क़ायम कर सकता है। यह व्यक्ति के अकेले सोचने की शुरूआत थी। किताब में दर्ज वृत्तांत का टीकाकार या व्याख्याता अब वह स्वयं था।

पुस्तक और पाठक का यह रूपक आज के दौर में सिनेमा और दर्शक के रूपक में बदल गया है। जो बात यहां पुस्तक और पाठक के बारे में कही जा रही है वही फिल्म और उसके दर्शक के बारे में भी सत्य है। सीडी, पेनड्राइव, यूटोरेन्ट, यू–ट्यूब और अन्य ऑनलाइन स्थलों पर बहुत आसानी से आज किसी फिल्म का उसी तरह आनंद लिया जा सकता है जैसे एक पाठक आरामकुर्सी पर झूलते हुए या यात्रा करते हुए किसी किताब का आनंद लेता है। आज *प्लेज़र ऑफ रीडिंग* तथा *प्लेज़र ऑफ व्यूइंग* में चेतनागत स्तर पर कोई ख़ास फर्क नहीं रह गया है। बल्कि *प्लेज़र ऑफ रीडिंग* से कहीं आगे जाकर *प्लेज़र ऑफ व्यूइंग* ने मनष्य की चेतना को ज़्यादा व्यापक स्तर पर मुक्त किया है। मुद्रित या लिखित पाठ को समझने में अक्षर ज्ञान की जो बाध्यता किताब और पाठक के दरमियान रहती है फिल्म और दर्शक के बीच यह बाध्यता पूरी तरह मिट जाती है।

पिछले दिनों हिन्दुस्तान टाइम्स और ऑक्सफोर्ड बुक स्टोर द्वारा आयोजित *क्राइम राइटर्स फेस्टिवल* के एक सत्र के दौरान फिल्ममेकर दिबाकर बनर्जी को सुनने का मौका मिला। दिबाकर बनर्जी बांग्ला फिक्शन के मशहूर डिटेक्टिव *व्योमकेश बख़्शी* पर एक फिल्म बना रहे हैं। सत्र के दौरान एक श्रोता ने उनसे प्रश्न किया कि पुरानी लोकप्रिय पुस्तकों को फिल्म में बदलने से पुस्तक का मूल्य कम नहीं होता क्या? इस तरह तो लोग पुस्तक पढ़ना बंद कर देंगे। क्या यह ठीक है कि वे पुस्तक के स्थान पर फिल्म देख लें?

दिबाकर बनर्जी ने अपनी शैली में इस प्रश्न का जवाब तो दे दिया जिसमें दो बातों पर बल दिया गया था कि एक तो फिल्म और किताब दो अलग–अलग माध्यम हैं। लिहाजा एक दूसरे की लोकप्रियता को वे कम कर देते हैं ऐसा वे नहीं मानते। दूसरी महत्वपूर्ण बात उन्होंने यह कही कि भाषा का प्रश्न एक बड़ा प्रश्न है। उनका तर्क था कि व्योमकेश बख़्शी जब दूरदर्शन पर आया तो उसे उन लोगों ने भी देखा जो बांग्ला नहीं जानने के कारण ऐसे किसी जासूस से परिचित नहीं थे। यह एक महत्वपर्ण बात है। शरतचन्द्र के कई बांग्ला उपन्यासों पर बनी हिन्दी फिल्मों के संदर्भ में हम इसे देख चुके हैं। कई बार फिल्म इतना परफेक्ट अनुभव देती

है कृति के बारे में कि कृति को पढ़ने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। लेकिन हर बार ऐसा नहीं होता। यह बहुत कुछ निर्देशक की क्षमताओं पर भी निर्भर करता है।

फिल्म और किताब दो अलग–अलग माध्यम हैं। लिहाजा एक दूसरे की लोकप्रियता को वे कम कर देते हैं ऐसा वे नहीं मानते। दूसरी महत्वपूर्ण बात उन्होंने यह कही कि भाषा का प्रश्न एक बड़ा प्रश्न है। उनका तर्क था कि व्योमकेश बख़्शी जब दूरदर्शन पर आया तो उसे उन लोगों ने भी देखा जो बांग्ला नहीं जानने के कारण ऐसे किसी जासूस से परिचित नहीं थे। यह एक महत्वपर्ण बात है। शरतचन्द्र के कई बांग्ला उपन्यासों पर बनी हिन्दी फिल्मों के संदर्भ में हम इसे देख चुके हैं। कई बार फिल्म इतना परफेक्ट अनुभव देती है कृति के बारे में कि कृति को पढ़ने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। लेकिन हर बार ऐसा नहीं होता। यह बहुत कुछ निर्देशक की क्षमताओं पर भी निर्भर करता है।

दिबाकर बनर्जी का जवाब मुझे असाधारण फिल्म–निर्देशक सत्यजित रे की ओर खींच ले गया। रे ने अनेक फिल्में बनाईं लेकिन मेरे देखने में कोई ऐसी फिल्म नहीं है जिसमें उन्होंने मूल कृति की भाषा को बदल दिया हो। बांग्ला कहानी पर बांग्ला में फिल्म बनाई और हिन्दी कहानी पर हिन्दी में। हालांकि फिल्म–मेकिंग में ज़्यादातर लोग दिबाकर बनर्जी के समर्थक ही दिखाई देते हैं क्योंकि दुनिया की अलग–अलग भाषाओं में लिखे साहित्य पर दूसरी भाषाओं में फिल्में बनती रही हैं और प्रायः सफल भी होती रही हैं। फिर भी सिनेमा अगर सही माने में दृश्य का माध्यम है तो उसे भाषा के माध्यम के पार जाना ही चाहिए। रे की फिल्में इस पार जाने को बहुत खूबसूरती से मुमकिन बनाती हैं। *पाथेर पांचाली* और *चारूलता* को देखने के लिए दर्शक को किसी विशेष बांग्ला ज्ञान की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

दो

इंटरनेट के आने से सिनेमा देखने का पुराना अनुभव पूरी तरह बदल गया है। एक ज़माना था जब वीडियो कैमरे का उपयोग अंग्रेज अफसरों और ज़मींदारों की चाय पार्टियों को रिकॉर्ड करने तक ही सीमित था। बाद में दादा साहब फालके और हिमांशु राय के प्रयासों से भारतीय सिनेमा की बुनियाद पड़ी। अन्यथा फिल्में देखने का सौभाग्य अंग्रेज अफसरों और कुछ अंग्रेजीदां भारतीय अमीरों को ही हासिल था। फिल्में भी अंग्रेजी समाज की होती थीं। धीरे–धीरे परिदृश्य बदला और मनोरंजन के उस दौर के आधुनिक साधन *पारसी थियेटर* की जगह सिनेमाघरों ने ले ली। आज़ादी के बाद छोटे शहरों तक सिनेमा का बाज़ार फैल गया और भारतीय सिनेमा ने एक व्यावसायिक शक्ल अख़्तियार कर ली। इन सिनेमाघरों के भी अनेक दिलचस्प किस्से हैं।

आज भी पुराने बुजुर्ग फिल्म देखने के अपने रोमांचक अनुभवों को वैसे ही बयान करते मिल जाएंगे जैसे पुराने दिनों के ज़मींदार शिकार के किस्से बयान किया करते थे। उस दौर में महिलाओं के लिए किसी फिल्म को देख लेना तो एक किस्म की लाइफटाइम अचीवमेन्ट ही हुआ करती थी। बैलगाड़ियों और ट्रेक्टरों में भरकर गांवों और क़स्बों के समूहों द्वारा शहरों में सिनेमा देखने जाने का किस्सा अगली पीढ़ियों को बड़े चाव से सुनाया जाता रहा है। दूरदर्शन पर आने वाली फिल्म के इन्तज़ार के दिन अब गए। अब वीसीआर और वीएचएस का ज़माना भी गया। यहां तक कि सीडी और डीवीडी का प्रचलन भी पुराना पड़ने लगा है। टीवी पर अनेक चैनल हैं जिन पर लगातार फिल्में आती रहती हैं। यही क्यों आईपी टीवी जैसी प्रणाली का उपयोग करें तो इंटरनेट की सुविधा सीधे टीवी पर ले लें।

हालांकि सिंगल–स्क्रीन थियेटर और मल्टीप्लैक्स फिल्मों का सामूहिक प्रदर्शन बरकरार है लेकिन इसके समानांतर इंटरनेट ने फिल्में देखने का एक अनोखा संस्कार नए दर्शकों में पैदा किया है। अन्य वेबसाइटों को छोड़ दिया जाए तो कम से कम यू–ट्यूब एक ऐसी जगह है जहां आप दुनिया की किसी भी भाषा की फिल्म देख सकते हैं। सिनेमा के दर्शक के सामने यह सुविधा पहले कभी नहीं थी। नई इंटरनेट फ्रेंडली जनरेशन इसे बख़ूबी समझती है। इंटरनेट पर फिल्मों को अपलोड करने की सुविधा से एक और लाभ यह हुआ है कि अनेक प्रयोगधर्मी फिल्मकार जिनकी फिल्में सिनेमाघरों की खर्चीली रिलीज से महरूम ही रह जाती थीं आज बड़ी आसानी से इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। सिनेमा के रसिकों के लिए तो इंटरनेट का यह दौर एक तरह का स्वर्ण–युग है। अब उन्हें फिल्म लाइब्रेरियों,

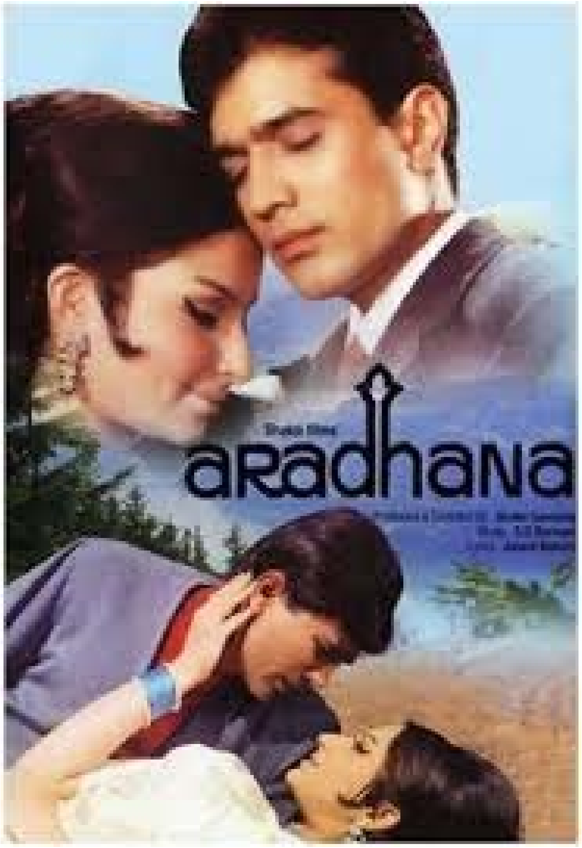

फिल्म–संग्राहकों का मुंह नहीं देखना पड़ता जो कि अंततः एक महंगा सौदा भी था। फिल्म रसिक अब कम खर्चे में भी अपना स्वयं का होम–थियेटर बना सकते हैं, बल्कि बना रहे हैं। सिनेमा देखने के पारंपरिक अनुभव में यह एक नया शिफ्ट है जिसे भारतीय समाज में इंटरनेट–साक्षरता के बढ़ने के साथ–साथ गति मिलेगी।

तीन

सिनेमा के व्यवहार हमारे समाज में लोकरंगों की तरह ही भीतर तक रचे–बसे हैं। केश–सज्जा से लेकर वेश–भूषा और भाव मुद्राओं तक के अनुकरण का चलन आम है। कई लोग तो इस क़दर दीवाने होते हैं कि वे अपने पसंदीदा कलाकार के युग में ही जीने लगते हैं। ऐसे देवानंद, राजेश खन्ना, अमिताभ बच्चन और शाहरूख खान, माधुरी दीक्षित, ऐश्वर्या और कैटरीना कैफ़ के डुप्लीकेट आपको ज़ल्दी–ज़ल्दी देखने को मिल जाएंगे। सिनेमा का ही असर है कि घर से लेकर बाज़ारों और यात्राओं के दौरान हर जगह आप देखेंगे कि फिल्मों का लगातार प्रदर्शन हो रहा है। पान की दुकान, वस्त्र विक्रेता की दुकान, छोटे–छोटे रेस्टोरेंट आदि विभिन्न स्थानों पर एक टीवी सेट रखा मिलेगा जिसपे कोई न कोई फिल्म चल रही होगी। यात्रा के दौरान दिखाई जाने वाली फिल्मों का मामला तो और भी दिलचस्प है।

राजेश खन्ना की पहली कामयाब फिल्म *आराधना* का वो गाना याद कीजिए 'मेरे सपनों की रानी कब आएगी तू'। गाने के एक दृश्य में ट्रेन कम्पार्टमेंट में अंग्रेजी नॉविल पढ़ती हुईं शर्मिला टैगोर यात्री और पुस्तक के आत्मीय संबंध का प्रतीक प्रतीत होती हैं। इंटरनेट और स्मार्टफोन की संस्कृति से पहले पुस्तक या पत्रिका पढ़ते हुए यात्री भारतीय ट्रेनों और बसों का एक आम दृश्य हुआ करता था। रेलवे स्टेशनों के बुक–व्हीलर पर बिकने वाले जासूसी और अपराध आधारित उपन्यासों, कॉमिक्सों, गीताप्रेस गोरखपुर की धार्मिक पुस्तकों का आज भी बिकते जाना पठित संस्कृति के प्रति हमारे आकर्षण को बनाए हुए है। लेकिन इसके समानांतर एक और दृश्य है जो तेज़ी से भारतीय यात्रियों की जीवन–शैली का अंग बनता जा रहा है। और यह है स्मार्टफोन, आई पैड और लैपटॉप पर फिल्में देखने का चलन।

यह नई दृश्य संस्कृति है। कानों में ईयरफोन, आंखें लैपटॉप या मोबाइल की स्क्रीन पर। पढ़े–लिखे और खाते–पीते यात्रियों ने मुद्रित इबारतों का साथ छोड़ दिया है और वे नए दृश्य कल्चर की ओर मुड़ गए हैं। इस दृश्य कल्चर में चयन की सुविधा है और विकल्प बदलने की आज़ादी है। हवाई यात्राओं में यात्री की सीट के सामने लगे डिजिटल स्क्रीन टैब्स और ईयरफोन की सुविधा इस आज़ादी का उत्तम उदाहरण है। ऐसा उन वीडियो–कोच बसों में मुमकिन नहीं था जिनमें एक वीसीआर हुआ करता था और जिस पर रात भर कम से कम फिल्में दिखाई जाती थीं। यात्री चाहे न चाहे उसे फिल्म देखनी ही थी। यह सोचना ही कितना रोमांचक है कि यात्रियों से भरी एक बस चली जा रही है, बस में अंधेरा है और सभी यात्रियों की आंखें वीडियो सैट पर प्रक्षेपित हैं। कुछ ऐसा प्रतीत–सा होता है जैसे कोई सिनेमाघर पहिए लगाकर सड़कों पर दौड़ रहा हो। सिनेमा के संदर्भ में वीडियो–कोच बसों के दर्शकों की सामूहिकता, फ्लाइट के सफर के दौरान एक निजी वैयक्तिकता में बदल जाती है। ये दोनों उदाहरण भारतीय लोकवृत्त में सिनेमा के प्रति दर्शक के वैयक्तिक एवं सामूहिक आचरण को दो भिन्न चेतनागत स्तरों पर समझने की मांग करते हैं।

•

निकष

पुस्तक : आदिवासी कौन
संपादक : रमणिका गुप्ता
प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली
मूल्य : 250 रुपये

जरूरत है बिरसा के विस्तार की

पिन्टू कुमार मीणा

'आदिवासी कौन' रमणिका गुप्ता की संपादित पुस्तक है, जो 2008 में प्रकाशित हुई। हिंदी में आदिवासी साहित्य आलोचना पर बात करते समय कई प्रश्न सामने आते हैं। 'आदिवासी कौन' इससे जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। दलित–विमर्श के संदर्भ में भी यह प्रश्न खड़ा हुआ था कि दलित किसे माना जाए। अर्थात् दलित कौन? अतः किसी भी विमर्श के संदर्भ में ये प्रश्न स्वतः ही खड़े हो जाते हैं कि उक्त विमर्श किस संदर्भ में है?, किन घटकों को इनमें माना जाए?, शोषण के कारण क्या हैं?, शोषण की प्रक्रिया क्या थी या है?, क्या उपाय किए जा सकते हैं? आदि आदि। इस पुस्तक में केवल आदिवासी साहित्यकारों, आलोचकों के आलेख संकलित हैं। ये विमर्शकार विभिन्न भारतीय भाषाओं में लेखन कार्य कर रहे हैं। संपादकीय के अतिरिक्त इस पुस्तक को चार प्रमुख अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन विभिन्न अध्यायों में विभिन्न आदिवासी साहित्यकारों के आलेखों के माध्यम से इस प्रश्न के सार्थक विकल्प देखे जा सकते हैं।

वाहरु सोनवणे का महत्वपूर्ण आलेख 'आदिवासी हिन्दू नहीं हैं' आदिवासी अस्मिता के धार्मिक पहलू पर केन्द्रित है। यह आलेख उन्होंने 1990 में पालधर जिला 'ठाणे' में आदिवासी साहित्य सम्मलेन के दौरान अध्यक्षीय भाषण में पढ़ा था। आदिवासी अस्मिता के धार्मिक पहलू पर सबसे बड़ा काम डॉ. रामदयाल मुण्डा का है। इसलिए उक्त आलेख को उनकी परंपरा का ही विकास कहा जाएगा। इस आलेख में वाहरु सोनवणे ने विस्तृत रूप में आदिवासी जीवन के आदिम रूप से वर्तमान तक के दर्दनाक जीवन–संघर्ष को उजागर किया है, जिसमें भारतीय मिथकों का भी सहारा लिया गया है। आदिवासी साहित्य के सन्दर्भ में इनका मानना है कि आदिवासी साहित्य लिखित और वाचिक दो रूपों में माना जाना चाहिए और वाचिक साहित्य में हमें आदिवासी जीवन–संस्कृति का दर्शन होता है।

आर्यों के आक्रमण से गिरिकुहरों तथा वनों में आश्रय लेना मनोरंजनकारी घटनाएं नहीं हैं, जिन्हें पढ़कर भुलाया जा सके। सही अर्थों में यहीं से आदिवासियों की सामाजिक दुर्दशा का प्रारंभ हुआ। यहीं से उनके वनवास की कालरात्रि की शुरुआत हुई। इस दृष्टि से आदिवासी जीवन–संघर्ष को देखने वाले विमर्शकारों में डॉ. विनायक तुमराम का नाम उल्लेखनीय है। उनके आलेख 'आदिवासी कौन' में आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को विवेचित किया गया है। उनके अनुसार, "आज आदिवासी शब्द के उच्चारण से ही हमारे सम्मुख वह मनुष्य खड़ा हो जाता है–जो अपनी स्वतंत्र परंपरा सहित, सहस्त्र सालों से गांवों–देहातों से दूर घने जंगलों में रहनेवाला, संदर्भहीन मनुष्य, एक विशेष पर्यावरण में अपने सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को जान की कीमत पर संजोये, प्रकृतिनिष्ठ, प्रकृति–निर्भर... चिलचिलाती धूप में तपी उसकी पीठ, यदि भोजन मिल भी जाए तो कन्धे पर शिकार का बोझ–यही है आधुनिक भारत में आदिवासी का करुणापूर्ण दृश्य!" उक्त लेख में आदिवासी कौन के संदर्भ में लेखक महात्मा जोतिबा फुले की एक कविता को उद्धृत करता है–"गोंड भील क्षेत्री ये पूर्व स्वामी/पीछे आए वहीं ईरान/शूर, भील, मछुआरे मारे गए रारों से/ये गए हकाले जंगलों गिरिवनों में।"

जिन आदिम जनसमूहों ने इस देश का सांस्कृतिक क्षेत्र समृद्ध किया, उन्हीं आदिम जनजातियों को अपने पेट की खातिर जंगल–जंगल मारे–मारे भटकना पड़ता है। रत्नाकर भेंगरा और सीआर बिजोय का सयुंक्त आलेख 'आदिवासी किसे कहते हैं, उनकी सांस्कृतिक

पहचान क्या है?' है। इस आलेख में आदिवासियों की भारत में स्थिति, आदिवासी जनसंख्या, उसका विभाजन और प्रतिरूपण, आदिवासियों की चिंताजनक स्थिति तथा संस्कृति और आदिवासी संस्कृति जैसे विषयों के माध्यम से आदिवासी कौन और आदिवासियों की संस्कृ ति को व्याख्यायित किया गया है।

आदिवासियों पर कितनी तरह के जुल्म किए जा रहे हैं। भाषा, संस्कृति, जमीन और बहू–बेटी तक इनसे छीने जाने की साजिश रची जा रही है। इस दृष्टि से महादेव टोप्पो का 'कुचले जाते आत्मसम्मान के विरुद्ध' आलेख महत्वपूर्ण है। इस आलेख के माध्यम से आदिवासियों के एकजुट होने पर बल दिया गया है। लेखक का मानना है कि "हम आपसी संवाद शुरू करें! बहस करें! पढ़ें, सोचें और अपने भाइयों और बहनों को अपने उत्थान के लिए सोचने–समझने हेतु प्रेरित करें, तभी हम अपनी कमजोरियों एवं सभ्य समाज द्वारा बनाए गए बंधनों से मुक्त हो सकते हैं, वरना हमारे बीच भी कोई कवि पैदा होगा जो नीग्रो कवि 'सिकी सेपाम्ला' की तरह कहेगा–"अश्वेत लोग पैदायशी गायक होते हैं/अश्वेत लोग पैदायशी धावक होते हैं/अश्वेत लोग चाहते हैं–अमन–चैन/ये सारे मिथक हमें बनाए रखते हैं भोला–भाला/हमें पिया गया है शैम्पेन के बुलबुलों के साथ/हमें मालूम है दमघोंटू दर्द के बारे में/हम छटपटाते हैं अपने अपमान की पीड़ा में/गायक/ध ावक/शांति–प्रेमी/कोई देखता नहीं/हमारे भीतर घुमड़ते तूफान को/कोई नहीं चाहता जानना कि हम अपने ही रसातल तक पहुंच गए हैं।"

बास्ता सोरेन का आलेख 'सरना : आदिवासियों की पहचान है' आदिवासियों की धार्मिक पहचान से संबंधित है। इस आलेख में बास्ता सोरेन की पुस्तक 'सरना' के कुछ अंशों को लिया गया है। सरना के माध्यम से लेखक ने आदिवासियों पर वर्तमान में हो रहे विभिन्न अत्याचारों का भी उल्लेख किया है। सरना आदिवासियों की ध ार्मिक पहचान है। लेखक का मानना है कि आदिवासी हिन्दू नहीं है, वह 'सरना धर्म' का अनुयायी है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि डॉ. मुण्डा ने इसे ही राष्ट्रीय स्तर पर 'आदि धरम' का नाम दिया है। कई संकट आज आदिवासी जीवन को प्रभावित और प्रताड़ित किए हुए हैं, आदिवासियों की संस्कृति आज संकट में है। इस दृष्टि से वासवी का आलेख 'आदिम जनजातियों की सांस्कृतिक पहचान का संघर्ष' उल्लेखनीय है। उक्त आलेख में पहाड़िया जनजाति को केंद्र में रखकर आदिवासी सांस्कृतिक अस्मिता के संकट को विवेचित किया गया है।

वासवी का ही एक अन्य आलेख 'आदिवासी महिलाओं का पलायन बनाम व्यापार' है। आदिवासी स्त्रियों के शोषण को साहित्य में भी कम ही अभिव्यक्ति मिली है। इस दृष्टि से उक्त आलेख की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। लेख में स्त्रियों के पलायन की शुरुआत 80 के दशक से मानी गई है, जब इन्हें दाई के रूप में काम करने के लिए ले जाया गया। पलायन के प्रमुख कारणों में गरीबी, शहरी जीवन–शैली का आकर्षण, परिवार का ऋणग्रस्त होना, रोजगार का विकल्प न होना, जमीन कम होते जाने के कारण, आय के साधन कम हो जाना आदि हैं। 'भारत के आदिवासी' पुस्तक से शिमरीचांन, सीआर बिजोय, रत्नाकर भेंगरा का सयुक्त आलेख 'नागा राष्ट्रवाद का उदय' है। लेख में नागा राष्ट्रवाद से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख हुआ है, जिसमें मिजो राजद्रोह का विशेष योगदान है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा 1993 ई. को अन्तर्राष्ट्रीय आदिवासी दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गई। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने ही उत्तर–पूर्वी राज्यों के आदिवासियों के लिए 'आत्म–निर्णय' के अधिकार की घोषणा की। डॉ. बी पाकेम के आलेख 'उत्तर–पूर्वी भारतीय राज्यों के आदिवासी और आत्म–निर्णय के अधिकार की संयुक्त राष्ट्रसंघ की घोषणा' में इसका विस्तृत विवेचन हुआ है। 'आत्म–निर्णय' के अधिकारों का मामला सर्वप्रथम डॉ. बी पाकेम ने 1985 ई. में उठाया था। 'आत्म–निर्णय' के अध िकार को व्याख्यायित करते हुए वे कहते हैं, "आत्मनिर्णय के सिद्धांत का अर्थ हमेशा अलग होने का अधिकार नहीं होता। इसका सीधा–सा मतलब है–लोगों को यह तय करने का अधिकार कि उनके हित के लिए सर्वोत्तम रास्ता क्या है?" अतः अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार आदिवासी लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त है, जिसके आधार पर वे अपनी राजनैतिक हैसियत तथा संस्थाओं को तय कर सकते हैं और साथ ही वे अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हेतु स्वतंत्रतापूर्वक प्रयास भी कर सकते हैं। स्वायत्तता तथा स्वशासन उनके इस अधिकार का अनिवार्य अंग है।

डॉ. आम्बेडकर आदिवासी समाज के उद्धार के लिए कितने प्रयासरत थे, कितने चिंतित थे, इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। इस कारण डॉ. आम्बेडकर पर श्री ठक्करबापा जैसे विद्वानों ने आरोप लगाया था। आज आदिवासियों के धर्मान्तरण को लेकर विशिष्ट फासिस्ट समुदाय द्वारा बहुत हल्ला मचाया जाता रहा है। इस खतरे की सूचना बाबासाहेब ने लाहौर 1936 में 'जात–पांत

तोड़क' मंडल के वार्षिक अधिवेशन में दिए गए अध्यक्षीय भाषण में दी थी, लेकिन तत्कालीन धर्म–मार्तंडों ने जानबूझकर इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया। इस दृष्टि से माया बोरसे का आलेख 'डॉ. आम्बेडकर के आन्दोलन में आदिवासियों का स्थान' महत्वपूर्ण है। डॉ. आम्बेडकर आदिवासियों के उद्धार के लिए कहते हैं–'आदिवासियों पर जीवन लुटा देना होगा। जी भरकर प्यार करना होगा और यह बात हिन्दुओं से कैसे संभव होगी।' डॉ. आम्बेडकर ने अपने भाषण के दौरान कहा था कि, "ऐसी बात नहीं है कि पतितों की, दीन–दलितों की सेवा करने का उपदेश हिन्दुओं को सिखाया नहीं जाता लेकिन इस प्रकार की सेवा प्रदान करके जाति से बहिष्कृत होने का भय उनके मन में रहता है, जिसके कारण हिन्दू व्यक्ति दीन, दासों की सेवा करने में पीछे रह जाता है। ...अगर अहिन्दू समाज ने उन्हें अपनाया तो हिन्दू विरोधी संगठनों के वे प्रमुख आधार बन सकते हैं और अगर ऐसा हुआ तो? ...तो फिर हिन्दू स्वयं को और अपनी जाति व्यवस्था की प्रणाली को धन्यवाद देंगे...।"

बाबासाहेब के विरोधी लोग जानबूझकर ऐसी गलत धारणा समाज में फैला रहे हैं कि बाबासाहेब का कार्य अस्पृश्यों तक ही सीमित था। उन लोगों को यह मालूम नहीं है कि उन्होंने 'डेक्कन एग्रीकल्चर रीलिफ एक्ट' के तहत कानून पास करके यह प्रस्ताव रखा कि आदिवासी समाज की भूमि का संरक्षण करना चाहिए। इस प्रस्ताव के द्वारा उन्होंने आदिवासियों की जमीन का संरक्षण मांगा था। 1974 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा आदिवासियों की जमीन–वापसी का कानून बाबासाहेब के इस प्रस्ताव का ही अंजाम था। उन्हें यह भी शायद मालूम नहीं कि गौतम बुद्ध का सेवक 'वांद' गोंड जाति का था। 'माया' शब्द 'गोंडी' भाषा में था। 'नाग' संस्कृति बौद्ध संस्कृति थी। रावण गोंड राजा था। डॉ. आम्बेडकर ने 17 जनवरी 1943 को महादेव गोविन्द रानाडे की 101वीं जयंती के अवसर पर दिए भाषण में कहा था–"आदिवासियों को अभी भी कपड़े कैसे पहने जाते हैं इसका भी पता नहीं और आज भी वे पाषाण युग की जिंदगी जी रहे हैं। इनकी संख्या हजारों में नहीं, लाखों, बल्कि करोड़ों में है। यह बहुत दुखद और शोकपूर्ण बात है... करोड़ों अस्पृश्य...,करोड़ों आदिवासी...करोड़ों गुनाहगार...करोड़ों बेघर...।"

प्रस्तुत पुस्तक के दूसरे खंड 'संस्कृति और मिथक' का प्रथम और इस पुस्तक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलेख 'भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन' है। इस आलेख के लेखक डॉ. रामदयाल मुण्डा हैं। यह आलेख इस पुस्तक को विशिष्ट बनाता है। आलेख में सर्वप्रथम 'असुर' शब्द को व्याख्यायित किया गया है। वेदों में सर्वप्रथम असुर शब्द का उल्लेख हुआ है, जिसके दो अर्थ हैं–(1) सुरविहीन और (2) सुराहीन। आदिवासियों के देवताओं के संदर्भ में लेखक का मानना है कि ऐसी बात नहीं है कि आदिवासियों के देवता नहीं होते। देवता हैं किन्तु दूसरों की भाषा में वे भूत–प्रेत ही रह जाते हैं। आदिवासियों के देवताओं को भूत–प्रेत कहकर उन्हें दुष्ट देवताओं की श्रेणी में रख दिया गया। अतः लेखक का मंतव्य भारतीय मिथकों की व्याख्या से है, जहां आदिवासियों को एक विशिष्ट असभ्य, दानवों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत लेख आद्योपांत अपने विषय को केंद्र में लेकर चलता है, जहां भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन के सन्दर्भ में कई पहलुओं की ओर ध्यान दिया गया है। सर्वप्रथम लेखक वेदों और उपनिषदों के सन्दर्भ में कहते हैं कि प्रारंभिक 11 महत्वपूर्ण उपनिषदों में से दो उपनिषदों 'मुंडक' और 'ऐतरेय' का संबंध आदिवासियों से है। ऐतरेय उपनिषद् की सृष्टि निर्माण संबंधी कथा मुंडा आदिवासियों की कथा से मिलती–जुलती है। छान्दोग्य उपनिषद् का 'सत्यकाम' भी एक आदिवासी युवक था। इस काल की विचारधारा के परिवर्तन में लेखक आदिवासियों की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं, "उपनिषद्काल तक आते–आते आर्य विचारधारा में काफी परिवर्तन आ गया था। याज्ञिक कर्मकांड की जगह ध्यान और तप पर अधिक बल दिया जाने लगा था। वेद जहां सांसारिकता पर जोर देते हैं वहां उपनिषद् संन्यास की बात करते हैं। वेद जहां अनेक देवताओं की बात करते हैं, उपनिषद्, ब्रह्मविद्या पर ही आ टिकते हैं। विचारों के इस क्रांतिकारी परिवर्तन में आर्येतर जातियों का भी हाथ रहा और वे आर्येतर जातियां और कोई नहीं उस समय की आदिवासी जातियां ही थीं।" भारतीय षड्दर्शन प्रणाली में शबर स्वामी ने मीमांसा दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत की, शबर स्वामी उत्कलप्रदेश की शबरा (मुंडा भाषा–भाषी) आदिवासी जाति के ही पूर्वज रहे होंगे। पतंजलि का योगदर्शन पूर्व से आदिवासियों में मौजूद है। अंतर मात्र इतना है कि किसी पंतजलि के द्वारा संस्कृत भाषा में प्रस्तुत न किए जाने के कारण वह प्रेतदर्शन कहलाता है।

डॉ. मुंडा का मानना है कि हिन्दुओं में मान्यता प्राप्त अधिकांश देवता (मिथकीय संकल्पना) आदिवासी देवता ही हैं। पुराणकाल में ही एक नए देवता शिव का आगमन होता है और ब्रह्मा–विष्णु–महेश की त्रिमूर्ति स्थापित होती है। "वस्तुतः शिव एक आदिवासी देवता हैं। आदिवासी

सभ्यता के ही अवशेष के रूप में सिन्धु घाटी की खुदाई में उपलब्ध शिव जैसी मूर्ति पशुओं से घिरी मिलती है। शिवजी का 'पशुपति' नाम इसी कारण से है। उनकी वेशभूषा आदिवासियों की ही तरह है। वे राक्षसों, वानरों, असुरों और दानवों के पूर्वज माने जाते हैं। आर्य समाज के प्रारंभ में वे एक बह्य और नीची श्रेणी के देवता के रूप में ही माने जाते थे... अधिकांश शिव मंदिर गांव के बाहर बनाए जाते हैं। यही बात मातृसत्ता की प्रतिनिधि देवी काली के संबंध में भी कही जा सकती है, जिसे हम शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में प्रतिष्ठित देखते हैं।" लेखक का मानना है कि एक प्रकार के आदिवासी राक्षस या असुर कहे गए हैं, जिनमें रावण आदि की गणना की जा सकती है। दूसरे प्रकार के आदिवासी वानर कहे गए हैं, जो श्रीराम की मदद करते हैं। अतः यहां स्पष्ट रूप से भारतीय मिथकों में आदिवासियों की उपस्थिति को देखा जा सकता है।

लेख क कृष्ण का संबंध भी आदिवासियों से जोड़ते हुए कहते हैं, यदि खींचतान न की जाए तो वैदिक साहित्य में उनका कहीं पता नहीं है और उपनिषद् साहित्य में तो उनका उल्लेख मात्र एक विद्यार्थी के रूप में होता है। यह भी दृष्टव्य है कि विष्णु के अवतार, जिनमें एक कृष्ण भी हैं, काले ही कहे जाते हैं जबकि आर्यों को गौर वर्ण का कहा गया है। भागवत में जो प्रेम स्वातंत्रय दिखाई देता है, वह आदिवासी समाज के लिए जाना–पहचाना सा लगता है। इनके अतिरिक्त राजा बलि, श्रृंगी ऋषि, आदि कवि वाल्मीकि, महाभारतकार व्यास, व्यासजी के पिता पाराशर, माता सत्यवती, यही नहीं पांडवों को भी लेखक ने अंशतः आदिवासी ही माना है। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं, "हम तो पांडवों को अंशतः आदिवासी ही कहेंगे। कर्ण क्योंकि वह किसी आदिवासी के यहां पाला गया, इसलिए गया–बीता रह गया और पांच पांडवों को पांडु का राजमहल मिला तो वे राजकुमार कहलाए।" भारतीय संस्कृति में भाषा, ध्वनि और संगीत के क्षेत्र में भी आदिवासियों की देन को नकारा नहीं जा सकता। संस्कृत वर्णों में मूर्धन्य वर्णों के आगम में द्रविड़ एवं मुंडा परिवार की भाषाओं का महत्वपूर्ण योग है। भारतीय संगीत के क्षेत्र में मुंडा जी आदिवासियों के योगदान के सन्दर्भ में कहते हैं कि भारतीय संगीत की 'नी' ध्वनी आदिवासियों की ही देन हैं। "आदिवासी गीतों की ऊंची तान का रहस्य पड़ोसी आर्यों को बहुत पहले ही मालूम हो गया था। उनके गीतों की यह विशिष्टता आज भी उसी रूप में विद्यमान है, ऊंचे स्वर में गाने की परंपरा आज भी वहां सुरक्षित है और आदिवासियों को इसके लिए गौरवान्वित होना चाहिए।" आयुर्वेद के सबसे बड़े आचार्य धनवंतरी ने अपने शिष्यों को दीक्षांत के समय बताया कि वैद्यक का जो भी ज्ञान मैंने तुम्हें बताया है, वह तत्संबंधी ज्ञान का अल्पांश ही है। यदि तुम इससे भी अधिक जानना चाहते हो तो वनवासियों, आदिवासियों के पास जाओ, वे तुम्हारी ज्ञान–पिपासा को तुष्ट करेंगे।

उक्त लेख के निष्कर्ष रूप में मुंडाजी के वक्तव्य दृष्टव्य हैं, "राम, कृष्ण और वामन जैसे मनुष्यों के देवत्व प्राप्त करने के पीछे रावण, कंस और बलि का चरित्र है. ... यदि आधुनिक भारतीय समाजमनीषी आचार्य श्रीनिवास क्षमा करें तो हम यह कहने की भी धृष्टता करते हैं कि भारतीय संस्कृति अनार्यों के सांस्कृतिकरण से अधिक आर्यों के अनार्यीकरण की कहानी है।" आदिवासी संस्कृति पर केन्द्रित अशोक सिंह का आलेख 'आदिवासी समाज की पारंपरिक संस्कृति का वर्तमान सच' है। उक्त आलेख में आदिवासी संस्कृति के वर्तमान संकटों के साथ आदिवासियों के आशावादी स्वर की अभिव्यक्ति भी हुई है। ब्रिटिश साम्राज्य और ईसाई मिशनरियों से आदिवासियों का जीवन प्रभावित हुआ है। लेकिन उनकी आधुनिकता में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से इनका सहयोग रहा है। आदिवासी समाजों में कई समाज–सुधारक भी हुए हैं। आधुनिक आदिवासी समाजों के निर्माण में इन नायकों का विशेष योगदान है। इस दृष्टि से आर. टोकिन रॉय रिम्बई का आलेख 'आधुनिक खासी समाज का विकास' महत्वपूर्ण है। आधुनिक खासी समाज के निर्माता के रूप में 'जीवन राय' को जाना जाता है। लेखक का मानना है कि "निश्चय ही यह जीवन राय के देशभक्तिपूर्ण कार्यों का फल ही है, जिसने खासी प्नार लोगों को, चाहे वे अपने पूर्वजों के धर्म को अभी तक माननेवाले हों या वे जिन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया, परस्पर अंतर्गुम्फित, अपनी मूल संस्कृति तथा पहचान को पश्चिम तथा पूर्व की प्रबल विचारधाराओं, जो कमोबेश उसे अनछुआ या फिर अनावृत्त भी नहीं रहने देती, के बीच भी बनाए रखने की सामर्थ्य दी है। उन्हें महान देशभक्त तथा आधुनिक खासी जगत का जनक कहना उचित ही है।"

वर्तमान आदिवासी साहित्य विमर्शकार आदिवासी मिथकों को नए अर्थों में व्याख्यायित करते हैं। भारतीय मिथकों को जिनमें आदिवासियों की छवि (रावण आदि) को एक बेडोल रूप में प्रस्तुत किया गया है, को नए अर्थों में व्याख्यायित करने की दृष्टि से लटारी कवडू मडावी का आलेख 'अहिंसावादी रावण : बुद्ध का समकालीन गणनायक' महत्वपूर्ण है। उक्त आलेख में गण पद्धतियों

के आधार पर रावण को अहिंसावादी प्रस्तुत किया गया है। यही नहीं राक्षसों की रक्ष–संस्कृति का निर्माण भी रावण ने वैदिक कर्मकांडों के विरोध में किया था। रावण शिवपूजक तो थे ही लेकिन उन्हें बुद्धकालीन मानकर लेखक ने मौलिकता का परिचय दिया है। लेखक का मानना है कि श्याम वर्ण धारण करने से आदिवासियों की हत्या कर दी जाती थी । इस प्रकार के आदिवासियों में बाली, मतंग, शबरी, तपस्वी मारीच, लवणासुर, शम्बूक, ताड़का तथा थादमाई आदि प्रमुख हैं। हरिराम मीणा का आलेख 'भारतीय मिथक, इतिहास और आदिवासी' है। वर्तमान में उनकी स्वतंत्र पुस्तक 'आदिवासी दुनिया' में इसका विस्तृत विवेचन हुआ है। इस आलेख के मूल में भी भारतीय मिथकों में आदिवासियों की छवि को फिर से विवेचित करना रहा है। साथ ही इतिहास में भी आदिवासी पहचान पर बल दिया गया है। मिथकीय व्याख्या पर ही केन्द्रित एक अन्य आलेख ताराम सुन्हेर सिंह का 'पौराणिक मिथकों की आदिवासी व्याख्या' है। इस लेख में 'शम्भु द्वीपे रेवा खंडे' को अनार्यों का भौगोलिक परिदृश्य घोषित किया गया है और विभिन्न आदिवासी राजवंशों का उल्लेख किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के तीसरे अध्याय 'धर्मान्तरण' पर अजीत जोगी का प्रथम आलेख 'हिन्दू अतिवाद का इतिहास' साम्प्रदायिकता पर केन्द्रित है। इस आलेख में हिन्दुओं से आशा करते हुए लेखक कहते हैं कि, "भारतीय गणतंत्र बहुसंख्यक हिन्दुओं पर यह अतिरिक्त जवाबदेही लादता है कि वे न केवल अल्पसंख्यकों को संरक्षण दें, बल्कि ऐसे कारगर कदम भी उठाएं जिससे वे अपना बहुमुखी विकास करके भारतीय मुख्यधारा के समकक्ष आ सकें।" विभिन्न अनार्य जातियों के धर्मान्तरण के स्वरूप को समकालीन विमर्शकार दो दृष्टियों से देखते हैं। प्रथम रूप में धर्मान्तरण को उस जाति विशेष के आवश्यकतानुसार आवश्यक और सकारात्मक रूप में माना गया है। इस खेमे में दलित साहित्य विमर्शकार आते हैं जबकि दूसरे खेमे के विमर्शकार इसे नकारात्मक रूप में मानते रहे हैं और धार्मिक अस्मिता की रक्षा के रूप में अपने धर्म की रक्षा पर बल देते हैं। इस प्रकार के लेखकों में आदिवासी साहित्य विमर्शकार आते हैं। आदिवासियों के धर्मान्तरण के कारणों की दृष्टि से लाल सिंह चौहान का आलेख 'धर्मान्तरण : कारण और उसकी सार्थकता' महत्वपूर्ण है। धर्मान्तरण के प्रमुख कारणों में लेखक हिन्दू धर्म की बुराइयों को ही मानते हैं। बास्ता सोरेन का आलेख 'ईसाई एवं सरना धर्मावलम्बियों का आपसी सम्बन्ध' ईसाई और सरना धर्म के धर्मावलम्बियों के आपसी संबंधों पर केन्द्रित है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'वैश्वीकरण' पर केन्द्रित तीन महत्वपूर्ण आलेख हैं। आदिवासी किसानों, उनकी समस्याओं पर कम ही लिखा गया है। इस पुस्तक में भी आदिवासी किसानों पर केन्द्रित एकमात्र आलेख पूरन बोरो का है। आलेख का नाम 'आदिवासी किसान वैश्वीकरण के जाल में' है। लेख में कृषि संबंधी कई आंकड़े देकर आदिवासी किसानी पर वैश्वीकरण के खतरे की और इंगित किया गया है। वैश्वीकरण का खतरा सिर्फ आदिवासी किसानों पर ही नहीं लगभग सभी छोटे भारतीय किसानों पर है। सामाजिक न्याय और आरक्षण पर भी कम लोग ही बोलते हैं। इस दृष्टि से शंकर लाल मीणा का आलेख 'सामाजिक न्याय बनाम निजीकरण' महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं, "जिस वर्ग के लिए योग्यता का अर्थ छल–कपट व चालाकी हो, स्वस्थ प्रतियोगिता का मतलब सुनियोजित बेईमानी हो, नीति का मतलब कर–चोरी हो, चैरिटेबल ट्रस्ट का मतलब मुनाफाखोरों का गैंग हो, जो स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को समय से पूर्व घट गई घटना मानता हो, राज्य–संस्था को केवल अपने हितचिंतन तक सीमित कर देना चाहता हो, अपने अलावा सबको फालतू बोझ समझता हो और देश की भाषा, संस्कृति, परम्पराओं से जिसका कोई रिश्ता नहीं रह गया हो, उस वर्ग की दया पर देश के आम गरीब आदमी को नहीं छोड़ा जा सकता, खासकर दलित, पिछड़े, आदिवासी, विकलांग, अनाथ और सम्पत्तिविहीन वर्ग को।" भारतीय सरकार आदिवासी दिवस को मनाने में उतनी निष्ठा नहीं रखती जितनी प्रवासी भारतीय दिवस मनाने में रखती है। इन दोनों दिवसों को राष्ट्रीय दिवस मनाने के दृष्टिकोण के आधार पर केन्द्रित रत्नाकर भेंगरा का आलेख 'प्रवासी भारतीय दिवस बनाम आदिवासी दिवस' (9 जनवरी बनाम 9 अगस्त) एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण आलेख है। लेखक का मानना है कि 9 अगस्त का दिन मनाने से भारत सरकार लगातार इनकार करती रही है। "देखना यह है कि भारत सरकार के मन में 20 मिलियन लोगों के लिए मनाया जानेवाला 9 जनवरी का दिवस प्रमुख है अथवा 80 मिलियन या उससे अधिक लोगों के लिए मनाया जानेवाला 9 अगस्त।" इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि झारखण्ड में 9 जनवरी का दिन 'बिरसा मुंडा' के आंदोलन की याद में मनाया जाता रहा है तथा 'यूनाईटेड नेशन्स' ने 9 अगस्त को 'अंतर्राष्ट्रीय मूल निवासी दिवस' घोषित किया था जिसमें डॉ. रामदयाल मुण्डा का विशेष योगदान रहा है।

रमणिका गुप्ता की उक्त पुस्तक में अधिकांश आलेख विषय के अनुरूप हैं। अर्थात् जिनका संबंध प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से 'आदिवासी कौन' से है। कई आलेखों में इस प्रश्न का जवाब भी मिला है। मिथकों के अतिरिक्त आदिवासी इतिहास उसकी ऐतिहासिक परंपरा का उल्लेख भी इस प्रकार की पुस्तक में अपेक्षित है जो यहां नहीं है। आदिवासी जीवन के कई सवालों के जवाब यहां मिलते हैं। 'जरूरत है बिरसा के विस्तार की' रमणिका गुप्ता के संपादकीय का नाम है। लेखिका का मानना है कि आज बिरसा के विस्तार की जरूरत है और लेखिका इस विस्तार के कई कारण बताती हैं। इसमें वे आदिवासियों के लिए सबसे बड़ा खतरा 'पहचान के संकट' को मानती हैं। इस संदर्भ में वे लिखती हैं, "आज अगर सबसे बड़ा खतरा आदिवासी जमात को किसी से है–तो वह है उसकी पहचान मिटने का। इक्कीसवीं सदी में उसकी पहचान मिटाने की साजिश योजनाबद्ध तरीके से रची जा रही है। किसी भी जमात, जाति, नस्ल या कबीले अथवा देश को मिटाना हो तो उसकी पहचान मिटाने का काम सबसे पहले शुरू किया जाता है और भारत में यह काम आज हिन्दुत्ववादियों ने शुरू कर दिया है। 'आदिवासी' की पहचान और नाम छीनकर उसे 'वनवासी' घोषित किया जा रहा है ताकि वह यह बात भूल जाए कि वह इस देश का मूल निवासी यानी आदिवासी है–वह भूल जाए अपनी संस्कृति–अपनी भाषा, अपना मूल धर्म 'सरना'।" वर्तमान संकटों में आदिवासियों के सामने सबसे बड़ा संकट अपनी अस्मिता, अपनी पहचान का संकट है। मध्य प्रदेश और झारखंड में चलाया जा रहा 'घर–वापसी' का अभियान इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जिसके चलते उन्हें हिन्दू व ईसाई बनाया जा रहा है। बिरसा के विस्तार का एक अन्य कारण लेखिका 'भाषा' को मानती हैं। आदिवासी एकता के लिए एक संपर्क भाषा का होना जरूरी है। आदिवासियों के लिए प्राथमिक शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा होनी चाहिए।

ग्रंथ सूची :

1. आदिवासी कौन, (आदिवासी कौन, ले. डॉ. विनायक तुमराम), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 26
2. आदिवासी कौन, (आदिवासी कौन, ले. डॉ. विनायक तुमराम), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 27
3. आदिवासी कौन, (कुचले जाते आत्मसम्मान के विरुद्ध, ले. महादेव टोप्पो), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 49–50
4. आदिवासी कौन, (उत्तर–पूर्वी भारतीय राज्यों के आदिवासी और आत्म–निर्णय के अधिकार की संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा, ले. डॉ. बी. पाकेम), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 85
5. आदिवासी कौन, ('डॉ. आम्बेडकर के आन्दोलन में आदिवासियों का स्थान', ले. माया बोरसे), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 88
6. आदिवासी कौन, ('डॉ. आम्बेडकर के आन्दोलन में आदिवासियों का स्थान', ले. माया बोरसे), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 89
7. आदिवासी कौन, ('डॉ. आम्बेडकर के आन्दोलन में आदिवासियों का स्थान', ले. माया बोरसे), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 95
8. आदिवासी कौन, ('भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन', ले. डॉ. रामदयाल मुंडा), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 96
9. आदिवासी कौन, ('भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन', ले. डॉ. रामदयाल मुंडा), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 102
10. आदिवासी कौन, ('भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन', ले. डॉ. रामदयाल मुंडा), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 104
11. आदिवासी कौन, ('भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन', ले. डॉ. रामदयाल मुंडा), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 105
12. आदिवासी कौन, ('आधुनिक खासी समाज का विकास', ले. आर. टोकिन रॉय रिम्बई), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 121
13. आदिवासी कौन, ('हिन्दू अतिवाद का इतिहास', ले. अजीत जोगी), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 170
14. आदिवासी कौन, ('सामाजिक न्याय बनाम निजीकरण', ले. शंकर लाल मीणा), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 200
15. आदिवासी कौन, ('सामाजिक न्याय बनाम निजीकरण', ले. शंकर लाल मीणा), सं. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 200
16. आदिवासी कौन, (संपादकीय– जरुरत है बिरसा के विस्तार की), ले. रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 6

(पिन्टू कुमार मीणा हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में शोधार्थी हैं)

●

निकष

पुस्तक : मा, कामरेड और दोस्त
कवि : सुरेन्द्र स्निग्ध
प्रकाशक : विजया बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली
मूल्य : 150/– रुपये

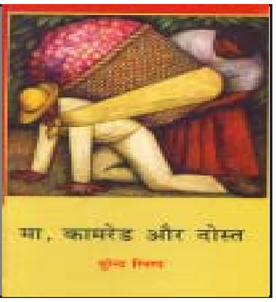

कामरेड कवि

सुमन कुमारी

सुरेन्द्र स्निग्ध का कविता–संग्रह 'मा, कामरेड और दोस्त' जल, जंगल, जमीन से शुरू होता हुआ गुजरात में हुए हिंदू–मुस्लिम दंगों को पूरे विस्तार से बयां करता है और वह वातावरण कैसे विचारों को परिवर्तित करता है यह भी स्पष्ट रूप से अंकित करता है।

जल–जंगल–जमीन से प्रत्येक मनुष्य का जुड़ाव होता है परंतु आधुनिकता की परतें लपेटे हुए बहुत कम संख्या में ये लोग जल–जंगल–जमीन को सुरक्षित रखने की लड़ाई लड़ रहे हैं। प्रत्येक मनुष्य की नींव है जल–जंगल–जमीन, इसके बिना मनुष्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

'मा, कामरेड और दोस्त' कविता–संग्रह की पहली कविता 'हमेशा जवान है हमारा प्यार' में खेत की गीली मिट्टी को हृदय, सुबह की पहली किरण को जुझारू उपहार और हाथों को कठोरता और उंगलियों की दृढ़ता बताया गया है। इसे प्यार–मिट्टी का इस्पाती संबंध भी बताया गया है–''खेतों की तरह/खलिहान की तरह/खेतों–खलिहानों में खटते किसान की तरह/मजदूरों के कदमों के जलते निशान की तरह/कर्मठ/सचेत/जुझारू/अजेय!''

किसानों को अपने खेतों व खेती से गहरा प्रेम होता है। वह कठिन से कठिन परिश्रम करता है अच्छी से अच्छी फसल उगाने के लिए और उसे अपने परिश्रम का फल अवश्य ही मिलता है। किसान सदैव कर्मठ, सचेत, जुझारू और अजेय मन से अपने खेत में काम करता है। यहां किसान और खेती में लगाव की उपमा प्रेमी–प्रेमिका के संबंध से दी गई है। जिस तरह प्रेमी अपनी प्रेमिका को अलग–अलग भाव से संबोधित करता है, उसी प्रकार किसान भी अपनी फसल को अलग–अलग भाव से संबोधित करता है।

'मा, कामरेड और दोस्त' कविता में एक बेटा जो नक्सलवाद की राह पकड़ लेता है, उसकी मां उससे सवाल करती है कि क्यों वह पढ़ाई छोड़ गली–गली नाटक करता या गीत गाता चलता है–''आपका बेटा, नक्सलाइट हो गया है/समझाइए, बुझाइए/वापस बुला लीजिए घर।''

बेटा समाज को सुख–शांति देने के लिए नक्सलाइट बनता है। परंतु उसकी मां को उसकी ही चिंता है। वह चाहती है कि उसका बेटा पढ़–लिखकर एक बेहतर इंसान बने।

सुरेन्द्र स्निग्ध ने अपने लेखन को भी एक चुनौती के रूप में लिया है और उसे भी एक कविता का रूप दे दिया है। जब मन शून्यहीन होता है तब भी कुछ कहता है और जब मन शब्दों की गुंजन की भीड़ में होता है तब भी कविता गढ़ता है। तभी कवि कहता है–''है न सचमुच प्रेम बहुत कठिन/प्रेम कविता लिखना और भी कठिन है मेरे दोस्त/प्रेम करना तो और भी कठिन।''

यहां कवि ने प्रेम करना और कविता लिखना दोनों को ही अत्यधिक कठिन माना है। जिसे सही रूप में समझ पाने में ही कठिनाई है।

तूफान, सूनामी जिस शहर को अपना घर बनाती है उस शहर वालों को बेघर कर जाती है। वहां का जन–जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। कुछ भी पहचाना सा नहीं लगता। हर राह बेगानेपन की गवाही देती है। दूर–दूर तक कोई दृश्य नहीं, कोई जीवन भी नहीं दिखाई पड़ता। तूफानी लहरों ने जैसे पूरे शहर को समा लिया हो और एक भयावह सन्नाटा छोड़ रखा हो। 'लाल छतरी वाली बुढ़िया' कविता में तूफान आने के बाद शहर में लौटती बुढ़िया की मनःस्थिति का वर्णन है– ''बुढ़िया इस शहर में लौटने वाली प्रथम नागरिक थी।''

सहज भाषा का प्रयोग करते हुए ये कविताएं समाज से सवाल पूछती हैं, सवालों को उत्पन्न करती हैं, विचारों को उकेरती हैं, मन को चोट पहुंचाती हैं। सभी विषय आम–जन के घर व समाज से लिए गए हैं। तभी सभी कविताएं पाठक के मन में सोच उत्पन्न करती हैं। सुरेन्द्र स्निग्ध अपनी रचनाओं से आधुनिकता के मिले–जुले मर्म को छूते हुए यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

'तूफान' का आगमन संपूर्ण जीवन को समाप्त कर देता है। उसे दुबारा से जीने के लिए आरंभ से नींव रखनी पड़ती है।

समाज में निम्न से निम्न वर्ग के प्रत्येक मनुष्य को नींद ना आने की बीमारी है। नींद आ भी जाए तो नींद लेने की दिक्कत है क्योंकि उसके पास पर्याप्त समय नहीं होता है। हर बड़े तबके के लोग अपनी दुकानों पर मजबूर मजदूरों को काम पर रखते हैं। वह भी ऐसा बाल मजदूर जो अपने बचपन को ही न जिये हों। बड़े तबके के लोग थोड़ी मजदूरी में बाल मजदूर से खूब काम करवाते हैं, बदले में एक वक्त का बासी खाना देते हैं और सुबह उजाला होने से पहले ही उसे जगा कर मजदूरी करवाते हैं। बीती देर रात तक बर्तन खुरचवाते हैं–''न नींद उसकी है न सूरज उसका/दिन को रात और रात को दिन कर रहा है बच्चा।''

कभी–कभी नींद प्रेमिका की मीठी मुस्कान और प्रेमिका के स्पर्श के समान लुभावनी होती है। सुकून भरी नींद मन और दिमाग को शांत करती है। नींद कई तरह से परिभाषित होती है और कई रूप से परिचित भी कराती है–''कविता को और प्रेमिका को चाहिए एकांत/चाहिए अपना ही क्षण।''

कविता और प्रेमिका बहुत भावुक होती हैं। उन्हें अपने आपको प्रस्तुत करने के लिए सदैव एकांत की दरकार होती है। तभी वह दोनों अपना कुछ कह पाती हैं। अगर उन्हें एकांत न मिले तो वह कभी अपने मन की बात को प्रस्तुत नहीं करतीं। एकांत में ही अपना प्रेम जताती है, एकांत में ही कलम के माध्यम से कागज पर उतरती है। कविता और प्रेमिका दोनों एक–दूसरे के समानांतर हैं।

'ज्वालामुखी की तरह उबल रहे हैं बच्चे' कविता में हिंदू–मुस्लिम को एक–दूसरे को मारने को आमादा और एक दूसरे के खून बहाने को आतुर दृश्य को दिखाया गया है–''ऊपर से लगते हैं सामान्य/भीतर ही भीतर ज्वालामुखी की तरह सुलग रहे हैं बच्चे।''

छोटे–छोटे 7–8 वर्ष के बच्चों ने अपने परिवार को अपनी आंखों के सामने मरते देखा है। हिंदू ने मुसलमान का खून किया, मुसलमान ने हिंदू का खून किया। इनके बच्चों का क्या कसूर? वह तो अपने अंदर कितने दर्द व आक्रोश दबाए बैठे रहे और प्रतिज्ञा की–जिन्होंने उनके परिवार को खत्म किया है बड़े होकर वह उनको खत्म करेंगे–''प्रतिहिंसा की भावना मार रही है ठाठें मेरे अंदर।''

रचनाकार ने अपने सरल शब्दों में समाज के कई पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया है। जल–जंगल–जमीन जैसी समस्याएं, जिनपर आज मात्र आदिवासी संस्थाएं ही संघर्ष कर रही हैं वही अपनी पहचान के लिए लड़ रही हैं। अपने अधिकार व कर्तव्य से वंचित हो रहे नौजवान नक्सलवाद की राह पकड़ रहे हैं। बड़ा तबका छोटे तबके से अपनी गुलामी करा रहा है। गुजरात के दंगों ने बच्चों से उनका बचपन छीन लिया।

संग्रह को आद्योपांत पढ़ने पर पता चलता है कि रचनाकार ने कविता रचने की मनोस्थिति को दर्शाया है। तूफान व सूनामी से तबाह शहर का रूपांतरण किया है। एक स्त्री के शरीर को किसी न किसी रूप में भोग्या बनाने का विरोध किया है।

इन सभी पहलुओं पर विस्तार से समाज के कई रूपों को प्रस्तुत किया गया है जो पाठकों को विचारने के लिए विवश करती है। आधुनिक युग में बड़ी–छोटी समस्याएं हमारे इर्द–गिर्द घूमती रहती हैं परंतु हमारा समाज इसे नजरअंदाज करके जीवन में आगे बढ़ता है। इन्हीं बड़ी–छोटी समस्याओं की ओर रचनाकार ने सबका ध्यान आकर्षित किया है। साथ ही लेखन को जमीनी पहलू से जोड़कर देखा है।

सहज भाषा का प्रयोग करते हुए ये कविताएं समाज से सवाल पूछती हैं, सवालों को उत्पन्न करती हैं, विचारों को उकेरती हैं, मन को चोट पहुंचाती हैं। सभी विषय आम–जन के घर व समाज से लिए गए हैं। तभी सभी कविताएं पाठक के मन में सोच उत्पन्न करती हैं। सुरेन्द्र स्निग्ध अपनी रचनाओं से आधुनिकता के मिले–जुले मर्म को छूते हुए यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

(सुमन कुमारी युवा कवयित्री हैं)

●

आदिवासी लेखकों को रमणिका फाउंडेशन से राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली

रमणिका फाउंडेशन द्वारा आयोजित वर्ष 2013—14 का सम्मान समारोह, 21 फरवरी, 2015 को साहित्य अकादेमी के सभागार में सम्पन्न हुआ। रमणिका फाउंडेशन आदिवासियों, दलितों और स्त्रियों के अधिकारों के लिए किए जा रहे संघर्षों को स्वर देने वाला एक ऐसा मंच है जो इस दिशा में कई वर्षों से प्रयासरत है। आदिवासी, दलित और स्त्री विमर्श के साथ जनवादी लेखन तथा अनुवाद के क्षेत्र में दिए जाने वाले ये सम्मान, हाशिए के शब्दों को रेखांकित करने और पूरी शक्ति के साथ उनके समर्थन में खड़े होने के अपने संकल्प की ओर बढ़ाया गया एक कदम है। ये सम्मान हिन्दी के प्रख्यात कवि केदारनाथ सिंह के हाथों, 'जनसत्ता' के संपादक ओम थानवी की अध्यक्षता में हुए कार्यक्रम में प्रदान किए गए। सम्मान प्राप्त करने वाले लेखकों में सर्वश्री महादेव टोप्पो, जोराम यालम नाबाम, अजय नावरिया, अनिता भारती, असगर वजाहत एवं जेएल रेड्डी हैं। इस अवसर पर सम्मानस्वरूप प्रत्येक लेखक को 21,000 रुपये की राशि, प्रतीक चिन्ह, शॉल तथा प्रशस्ति पत्र प्रदान किए गए।

समारोह रमणिका फाउंडेशन की अध्यक्षा श्रीमती रमणिका गुप्ता के स्वागत भाषण तथा 'अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच' के अध्यक्ष हरिराम मीणा के बीज वक्तव्य से प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि, वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह ने सम्मानित लेखकों को बध ााई देते हुए कहा कि समर्पित भाव से वंचित समाज के लिए एक मिशन की तरह काम करना रमणिका गुप्ता की पहचान बन गई है। आज अपने हाथों इन समर्पित लेखकों को सम्मानित करते हुए वह स्वयं बहुत गौरव का अनुभव कर रहे हैं। अपने अध्यक्षीय भाषण में ओम थानवी ने रमणिका फाउंडेशन के द्वारा किए जा रहे कार्य को प्रेरणास्पद बताया। उन्होंने आदिवासियों से आह्वान किया कि वे अपनी भाषा—संस्कृति और अस्मिता की रक्षा के लिए ईमानदारी से प्रयास करें। रमणिका गुप्ता ने अतिथियों का स्वागत करते हुए सम्मान समारोह के उद्देश्य की विस्तृत गतिविधियों पर प्रकाश डालते हुए पुरस्कृत लेखकों की विशिष्टताओं से परिचित कराया। उन्होंने देशभर में आदिवासियों की दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए कहा कि आखिर इनके साथ कब तक ऐसा सुलूक किया जाता रहेगा। हरिराम मीणा ने अपने बीज भाषण में रमणिका फाउंडेशन की सराहना करते हुए कहा कि यह एक ऐसा मंच है जिसने आदिवासी संस्कृति और साहित्य को सदैव आगे बढ़ाने और उसे पहचान दिलाने का काम किया है। उन्होंने कहा कि आज हिंदी संसार में जो भी बड़ा आदिवासी नाम सुना जा रहा है, जैसे निर्मला पुतुल, व्हारू सोनवणे, भुजंग मेश्राम, ग्रेस कुजूर आदि को यहीं से राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली है। कार्यक्रम का संचालन युवा कथाकार विवेक मिश्रा ने किया तथा अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापन 'अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच' के महासचिव गंगा सहाय मीणा ने किया। सम्मानित लेखकों के प्रशस्ति पत्र अमृता बेरा, विपिन चौधरी, केदार प्रसाद मीणा एवं राकी ने पढ़े। बन्नाराम मीणा ने रमणिका फाउंडेशन का परिचय पत्र पढ़ा।

रमणिका फाउंडेशन द्वारा ये सम्मान प्रत्येक तीन वर्ष पर दिए जाते हैं। इस बार महादेव टोप्पो को उनकी कविताओं, कहानियों और लेखों में आदिवासी संस्कृति एवं राजनीतिक स्थिति को अत्यंत मजबूती से विश्लेषित करने के लिए आदिवासी विमर्श के अंतर्गत 'बिरसा मुंडा' सम्मान से, अरुणाचल प्रदेश में रहकर हिन्दी में लिखने वाली जोराम यालम नाबाम को कथा साहित्य के माध्यम से अरूणाचल प्रदेश के आदिवासी समूहों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति को बेबाकी से चित्रित करने के लिए 'यू कियाङ नङबाह' सम्मान से, दलित लेखक अजय नावरिया को उनके लेखन में दलित लेखन के सच और चिंतन को विभिन्न विधाओं में सक्षम और रोचक शैली में उजागर करने के लिए 'आम्बेडकर सम्मान' से, दलित लेखिका अनिता भारती को उनके कथा, कविता और पत्रकारिता में स्त्री—मुक्ति और स्त्री सशक्तिकरण को उभारने के लिए 'सावित्री बाई फुले' सम्मान से सम्मानित किया गया। इसके अलावा प्रसिद्ध कहानीकार, नाटककार असगर वजाहत को साहित्य की विभिन्न विधाओं में सांप्रदायिक सद्भाव व जनवादी विमर्श को रेखांकित करने के लिए 'सफदर हाशमी' सम्मान से तथा जेएल रेड्डी को तेलुगु से हिन्दी और हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद कर भाषाओं में एक सेतु व सम्वाद कायम करने के लिए 'राजी सम्मान' से सम्मानित किया गया।

प्रस्तुति : विवेक मिश्र

रमणिका फाउंडेशन परियोजना के तहत

हाशिए उलांघती औरत : कहानी विशेषांक

उपलब्ध है

तेलुगु (200 रु.), मराठी (200 रु.), गुजराती (200 रु.), पंजाबी (200 रु.) और प्रवासी (300 रु.)

इनके लिए संपर्क करें!

मोबाइल : 09312039505, 07042350505

Email : ramnika01@gmail.com

पत्रिका नहीं आंदोलन भी, स्वयं जुड़ें, औरों को भी जोड़ें

युद्धरत
आम आदमी

वंचितों का आर्थिक-सामाजिक दस्तावेज़ी साहित्य

चैक, ड्राफ्ट अथवा ई बैंकिंग से रा। **'युद्धरत आम आदमी'** के नाम से देय होगा। ई बैंकिंग से भुगतान के लिए हमारे **इंडियन बैंक** अकाउंट नं. : 794412136 (आइ.एफ.एम.सी. कोड : IDIB000D008) का प्रयोग करें। उसकी रसीद ई-मेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com पर स्कैन कर अव य भेजें। **संपर्क : मो. : 011-46577704, 07042350505**

मैं...युद्धरत आम आदमी (मासिक) पत्रिका का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूं। इसके लिए वार्षिक 225/- / पांच वर्षीय 1125/- / आजीवन 5000/- के लिए नकद/चैक/ड्राफ्ट/ई बैंकिंग द्वारा राशि भेज रहा/रही हूं। मुझे निम्न पते पर युद्धरत आम आदमी का अंक प्रति माह भेजने की कृपा करें। कृप्या जो सदस्यता चाहिए उसे टिक ✓ करें बाकी काट ✗ दें।

नाम : ....

पता : ....

मोबाइल :   ई-मेल :

भूल–सुधार

आदरणीय शिल्पी गुप्ता एवं पाठको, 'युद्धरत आम आदमी' मार्च, 2015 के अंक में 'सलिलता और अश्लीलता के कटघरे में लोलिता' छपा। लेख में भी श्लील की जगह सलिल छप गया है।

यह शीर्षक संपादक मंडल के भूलवश प्रकाशित हुआ। इसके लिए 'युद्धरत आम आदमी' का संपादक मंडल क्षमाप्रार्थी है।

पाठकों से अनुरोध है कि इस लेख के शीर्षक को 'श्लीलता और अश्लीलता के कठघरे में लोलिता' पढ़ें।

लेखकों के पते

रंजना जायसवाल
ई.डब्ल्यू.एस.–210, राप्ती नगर, चतुर्थ चरण, चरगांवां,
गोरखपुर–273409,
मो.–09451814967

सी.बी. भारती
एचआईजी–5, कोशलपुरी, फेज–1
फैजाबाद, उप्र
मो. : 09415788944

Priyanka Sonkar
room no. 304 Ganga Hostel
JNU, New Delhi-67
Mob. 09582692523

दिलीप शाक्य
संपर्क–09868090931

पिन्टू कुमार मीणा
09603182417, 09868223693

सुमन कुमारी
09968362721

निर्मल रानी
09650507759
ईमेल : nirmalrani16@gmail.com

Pratibha Rai
"Akhyaika"
27, Gajapati Nagar,
Po. Sainik School,
Bhubaneswar-751005

इरेन्द्र बबुअवा
मो.–09910259573

भारत सिंह
09266867973

सुवंश ठाकुर
'शिल्पायन', सिपाही टोला, चूनापुर रोड, उत्तर गली नं.
11, पूर्णिया–954301
मोबाइल नं. 09973264550

हेमलता महिश्वर
वाई-146, रिजेन्सी पार्क-II, डीएलएफ फेज-IV, गुड़गांव-122002
09560454760
hemlatamahishwar@gmail.com
hemmahishwar.blogspot.com